मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 135 ● वर्ष 14, अंक 11 ● फ़रवरी 2025 ● दस रुपये

विशेष अंक
24 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

नौसेना विद्रोह - देश के मेहनतकशों की ऐतिहासिक विरासत 9

कौन हैं हमारे देश के 'मुफ़्तखोर'? 7

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला
मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त 17

केन्द्रीय बजट 2025-26

मज़दूरों, ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यवर्ग की क़ीमत पर अमीरों को राहत और पूँजीपतियों और धन्नासेठों को लूटने की पूरी छूट का बेशर्म दस्तावेज़

सम्पादकीय अग्रलेख

पर्याप्त हो-हल्ले के साथ मोदी सरकार ने अपने तीसरे कार्यकाल का पहला बजट पेश किया। वित्तमन्त्री निर्मला सीतारमण ने बजट पेश करते हुए एलान किया कि मोदी सरकार आयकर की कवरेज व दरों में भारी बदलाव करते हुए देश के मध्यवर्ग को बड़ी राहत देने जा रही है। इस बदलाव के तहत अब रु. 12 लाख प्रति वर्ष, या रु. 1 लाख प्रति माह तक कमाने वालों पर वास्तव में कोई आयकर नहीं लगेगा। यानी उन्हें आयकर से पूरी तरह से छूट होगी। पहले यह सीमा रु. 7 लाख प्रति वर्ष थी। यह ख़बर आते ही देश के गोदी मीडिया पर जश्न का माहौल छा गया। ऐसा लग रहा था मानो मोदी सरकार ने देश की जनता के लिए कोई अभूतपूर्व कल्याणकारी नीति लागू कर दी हो। लेकिन जैसे ही आप आँकड़ों को देखते हैं, तो आप पाते हैं कि इसका फ़ायदा केवल 3 करोड़ लोगों को हासिल होगा, जो खाते-पीते मध्यवर्ग और उच्च वर्ग से आते हैं। वैसे भी देश की जनता की मुख्य समस्या है महँगाई और बेरोज़गारी। महँगाई का प्रमुख कारण है वसूली टैक्स, यानी जीएसटी और पेट्रोल व डीज़ल पर भारी लूटपाट टैक्स। इनके कारण ही देश की जनता को खाने-पीने की वस्तुओं, कपड़े, ईंधन, दवाओं, शिक्षा आदि की सेवाओं पर भारी महँगाई झेलनी पड़ रही है। क्या इन करों में कोई कटौती की गयी है? नहीं।

इसके अलावा, सरकार ने अपने सामाजिक ख़र्च में भी वास्तविक तौर पर कटौती की है। वजह यह कि खाते-पीते मध्यवर्ग और धनी वर्गों को आयकर में दी गयी छूट के कारण सरकारी खज़ाने को जो नुकसान उठाना पड़ेगा, उसकी भरपाई करनी होगी। उसकी भरपाई देश के पूँजीपति वर्ग, यानी कारखाना-मालिकों, कम्पनियों, धनी व्यापारियों, धनी पूँजीवादी फार्मरों व कुलकों पर समृद्धि टैक्स लगाकर तो की नहीं जा सकती है, क्योंकि भला मोदी सरकार उस पूँजीपति वर्ग पर टैक्स कैसे बढ़ा सकती है, जिसने हज़ारों करोड़ का चन्दा भाजपा को दिया और मोदी को तीन-तीन बार धनबल के बूते सत्ता में पहुँचाने का काम किया? नतीजतन, अप्रत्यक्ष करों को बार-बार बढ़ाकर और सामाजिक ख़र्च में कटौती करके ही देश की जनता से पूँजीपतियों और धनिक वर्गों को दी जाने वाली छूट से होने वाले नुकसान की भरपाई की जाती है और इस बार के बजट में भी यही किया गया है।

बढ़ती बेरोज़गारी से निपटने के लिए भी बजट में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है। बेरोज़गारी की समस्या और व्यापक मेहनतकश आबादी की घटती वास्तविक आय की समस्या ही देश में कुल प्रभावी माँग की कमी की समस्या के मूल में है। बेरोज़गारी और घटती औसत आय का कारण प्रभावी माँग की कमी नहीं है, बल्कि यह बेरोज़गारी और घटती औसत आय की समस्या है, जो प्रभावी माँग में कमी को पैदा करती है। और बेरोज़गारी और घटती औसत आय की समस्या का कारण है मौजूदा आर्थिक मन्दी, जो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आवर्ती क्रम से आती

(पेज 6 पर जारी)

कुम्भ में भगदड़ : भाजपा के फ़ासीवादी प्रोजेक्ट की भेंट चढ़ी जनता

● चन्द्रप्रकाश

इलाहाबाद में कुम्भ मेले में 29 जनवरी को हुई भगदड़ ने फ़ासीवादी भाजपा के बर्बर अमानवीय चेहरे को एक बार फिर उजागर कर दिया है। प्रशासन द्वारा दिये गये आँकड़ों के मुताबिक़ इस भगदड़ में 54 लोग मारे गये हैं लेकिन सोशल मीडिया और कई अन्य यूट्यूब चैनलों पर वायरल चश्मदीदों के वीडियो देखें तो अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि यह संख्या कुछ सौ से लेकर कुछ हज़ार तक भी हो सकती है। लगभग 1800 लोगों के लापता होने की ख़बर प्रशासन द्वारा दी जा रही है। लेकिन सच्चाई यह है कि इस भयंकर हादसे में मरने वालों की वास्तविक संख्या का शायद ही कभी पता चल पायेगा।

वास्तव में 29 जनवरी को भगदड़ की घटना के बाद से ही पूरा प्रशासनिक तन्त्र मीडिया मैनेजमेण्ट में लग गया था। इसे इस तथ्य से ही समझा जा सकता है कि झूँसी के ऐरावत द्वार पर हुई भगदड़ जो संगम नोज पर हुई भगदड़ से कहीं ज़्यादा भयंकर थी, उसकी ख़बर लोगों तक दो दिन बाद यूट्यूब चैनलों के माध्यम से पहुँची। चश्मदीदों के मुताबिक़ भगदड़ के बाद प्रशासन ने वहाँ से कई ट्रक मलबा हटाया, जिसमें अनुमान लगाया जा रहा है कि बहुत से मृतकों के शव भी रहे होंगे। लेकिन इस पूरी घटना पर प्रशासन न केवल चुप्पी साधे रहा बल्कि वीडियो के वायरल होने के बाद इससे अनभिज्ञ होने और जाँच करने की नौटंकी करता है। एक भयावह तथ्य यह भी है कि वायरल वीडियो में जिस चश्मदीद लड़की द्वारा इस पूरी घटना के बारे में बताया जा रहा है, ख़बर है कि वह भी उसके बाद से लापता है। फ़ासीवादी प्रशासनिक मशीनरी द्वारा भाजपा सरकार के चेहरे पर पड़े ख़ून के छींटे साफ़ करने के लिए ऐसे चश्मदीदों को ठिकाने लगाये जाने की आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता।

इतना ही नहीं, उसी दिन एक बाबा की गाड़ी से कुचलकर छः श्रद्धालुओं की मौत हो गयी लेकिन यह ख़बर भी इस बर्बर-रक्त सने दृश्य में खोकर रह गयी। ग़ौरतलब है कि दुर्घटना के तत्काल बाद से ही तमाम भाजपा नेता संवेदनहीनता की सारी हदें तोड़ते हुए एक तरफ़ इसे 'छोटी-मोटी घटनाएँ' बताने में लगे हैं। बागेश्वर बाबा जैसे लोग मरने वालों को मोक्ष मिलने की बात कहके इस पूरे हादसे की भयावहता का बर्बर मज़ाक बनाने में लगे हैं। वहीं दूसरी ओर प्रशासन इस बर्बर हादसे के पीछे किसी साज़िश की खोज़ करने में लगा है और इसका ठीकरा भाजपा के विरोधियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं

(पेज 11 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

न्याय, विधान, संविधान का घिनौना नंगा नाच

दिल्ली हाईकोर्ट ने कहा - दिल्ली में मज़दूरों का न्यूनतम वेतन नहीं बढ़ेगा, क्योंकि पड़ोसी राज्यों से ज़्यादा तनख़ा है दिल्ली में मज़दूरों की।

लेकिन आज मज़दूरों को ज़रूरत है लाखों में तब जाकर वे अपने माता-पिता, भाई-बहन-बच्चों को पाव-पाव दूध, खाने में दाल-सब्ज़ी, पढ़ाई, रहने के लिए घर नसीब हो सकता है। लेकिन आज की परिस्थिति आठ बाई आठ के कमरे में रहना, ना सही से खाने को, ना ही जीने का कोई उत्साह। सुबह जगो तो काम के लिए, नहाओ तो काम के लिए, खाओ तो काम के लिए, रात बारह बजे सोओ तो काम के लिए। ऐसा लगता है कि हम सिर्फ़ काम करने के लिए पैदा हुए हैं तो हम फिर अपना जीवन कब जीयेंगे। जहाँ तक तनख़ा की बात है, तो वो तो महीने की सात से दस के बीच में मिल जाती है, लेकिन सिर्फ़ पन्द्रह तारीख़ तक जेब में पैसे होते हैं, जिससे हम अपने बच्चों के लिए कुछ ज़रूरी चीज़ें ले पाते हैं। उसके बाद तो हर एक दिन एक-एक रुपया सोच-सोचकर ख़र्च करना पड़ता है। महीना ख़त्म होने से पहले ही बचे हुए रुपये भी ख़त्म हो जाते हैं।

ये काले कोटधारी सरकारी अफ़सर लाखों में सेलरी लेते हैं, फिर भी इनका ख़र्चा नहीं चलता। सरकारों में बैठे नेता, मन्त्री, विधायक, सांसद, आईएस, आईपीएस पढ़े-लिखे जोकर रिश्वत की चर्बी के बिना चल ही नहीं सकते।

मज़दूरों के लिए इनकी नज़र में सोलह हज़ार सेलरी ज़्यादा है।

मज़दूरों के लिए ये ख़ुशी की बात होनी चाहिए कि वर्तमान व्यवस्था के पास मज़दूरों को देने के लिए कुछ भी नहीं है, इसलिए इनके न्यायालय, कम्पनियों में आग लगाकर जश्न मनाने के दिन आ गये हैं। अगर मज़दूर ऐसा नहीं करता तो सरकारें एक बहुत बड़ी संख्या में बेरोज़गार मज़दूरों को किसी-न-किसी बहाने क़फ़न-दफ़न कर देंगी और कर रहे हैं।

मन्नू मज़दूर, ओखला दिल्ली
(पुनः प्रकाशित)

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय को आवण्टन बजट में दिखावटी वृद्धि :

हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और!

वृषाली

मोदी सरकार 3.0 का पहला केन्द्रीय बजट पेश किया जा चुका है। वित्त मन्त्री निर्मला सीतारमण ने "ग़रीब, युवा, अन्नदाता और नारी" पर केन्द्रित बजट पेश करने का दावा किया। "जेण्डर बजट" के लिए 4.49 लाख करोड़ रुपये आवण्टन के भी शिगूफ़े उछाले गये। लेकिन सुप्रीम कोर्ट समेत गुजरात हाई कोर्ट के निर्देशों के बावजूद आँगनवाड़ीकर्मियों के ग्रेच्युटी और मानदेय के बदले ग्रेड 3 व 4 कर्मचारियों के बराबर वेतन देने के बारे में कोई योजना नहीं ली गयी।

वर्ष 2025-26 के लिए 'महिला एवं बाल विकास विभाग' के लिए बजट अनुमान **26,889.69 करोड़ रुपये** तय किया गया है। इसमें 9 फ़ीसदी इज़ाफ़े का दावा किया गया है, इसके बावजूद **यह राशि कुल बजट का महज़ 0.53 फ़ीसदी है** (मोदी सरकार के तहत हमेशा ही महिला एवं बाल विकास विभाग के लिए बजट का 1 फ़ीसदी से कम राशि आबण्टित की गयी है।) इसका बड़ा हिस्सा सक्षम आँगनवाड़ी और पोषण 2.0 को आबण्टित किया गया है – **21,960 करोड़ रुपये। वर्ष 2024-25 के मुक़ाबले अगर देखा जाये; जब बजट अनुमान में सक्षम आँगनवाड़ी और पोषण 2.0 के लिए 21,200 करोड़ रुपये की अनुमान राशि तय की गयी थी और संशोधित अनुमान 20,071 करोड़ रुपये की राशि थी; तो यह निश्चित तौर पर ज़्यादा लगेगा। लेकिन अगर हम एक वर्ष पीछे जाएँ, तो वर्ष 2023-24 में इन दोनों स्कीमों के ऊपर वास्तविक राशि 21,810 करोड़ रुपये ख़र्च हुए। इस हिसाब से तो वर्ष 2025-26 के लिए मात्र 510 करोड़ रुपये ज़्यादा हुए।** तिस पर भी वित्त मन्त्री यह कह रही हैं कि "इन पोषण सम्बन्धी सहायता (कार्यक्रमों) के लिए लागत मानदण्डों को तदनुसार बढ़ाया जाएगा।" अर्थात, **जूतों के हिसाब से पैर काटा जाएगा** – लाभार्थियों की ज़रूरत के हिसाब से बजट बनाने के बदले बजट के हिसाब से लाभार्थियों पर ख़र्च तय किया जाएगा! आख़िरी बार यह **लागत मानदण्ड वर्ष 2017 में बढ़ाये गये थे** – सामान्य बच्चों के लिए 8 रुपये, गर्भवती/स्तनपान करने वाली महिलाओं व किशोरियों के लिए 9.50 रुपये व गम्भीर रूप से कुपोषित बच्चों के लिए 12.50 रुपये।

यह हाल है उस स्कीम का जिसका मुख्य लक्ष्य यह था कि बेहद सस्ती दरों पर बच्चों, गर्भवती महिलाओं आदि को देखरेख व पोषण तथा बुनियादी शिक्षा मुहैया की जाए ताकि श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन पर पूँजीपति वर्ग का ख़र्च कम किया जा सके। 'समेकित बाल विकास विभाग' को इस वर्ष 50 साल पूरे हो गये हैं। इन 50 सालों की "उपलब्धि" पिछले साल अक्टूबर में जारी 'विश्व भूख सूचकांक' से साफ़ हो जाती है। इस सूचकांक में **127 देशों की सूची में भारत 105वें स्थान पर 'गम्भीर' श्रेणी में है। 2024 की इस रिपोर्ट के अनुसार देश में 13.7 प्रतिशत जनसंख्या कुपोषित है, पाँच वर्ष से कम आयु के 35.5 प्रतिशत बच्चे अविकसित हैं, 18.7 प्रतिशत बच्चे दुर्बलता से ग्रस्त हैं और 5 वर्ष तक की उम्र के लिए शिशु मृत्यु दर 2.9 प्रतिशत है।** ज़मीनी स्तर पर यह स्थिति और बदतर ही होगी। 'समेकित बाल विकास परियोजना' के बुनियादी ढाँचे की असलियत यह है कि **जून 2024 तक 36 प्रतिशत आँगनवाड़ी केन्द्रों पर पीने का साफ़ पानी उपलब्ध नहीं, 35 प्रतिशत केन्द्रों में शौचालय की समुचित व्यवस्था नहीं। कुल आँगनवाड़ी केन्द्रों में से केवल आधे ऐसे हैं जो ख़ुद की इमारत में चलते हैं।** एक तरफ़ मोदी सरकार सक्षम आँगनवाड़ी के तहत आँगनवाड़ी केन्द्रों पर वाईफ़ाई, एलईडी स्क्रीन, वॉटर प्यूरिफ़ायर इत्यादि लगाने की योजना बना रही है जबकि असलियत में इन केन्द्रों पर बुनियादी सुविधाएँ भी मौजूद नहीं! मोदी जी का "गुजरात मॉडल" यही है! कहाँ दिल्ली के विधानसभा चुनावों के मद्देनज़र भाजपा ने दिल्लीवासियों को 500 रुपये में गैस सिलिण्डर और होली और दिवाली में मुफ़्त सिलिण्डर की रेवड़ी देने के जुमले फेंक रही थी, और कहाँ वित्त मन्त्री महोदया एलपीजी सब्सिडी के आबण्टन में 17.7 प्रतिशत की कटौती कर रही थीं!

बहरहाल, समेकित बाल विकास परियोजना पर लौटते हैं। इस स्कीम में ज़मीनी स्तर पर कार्यरत महिलकर्मियों के लिए मोदी जी ने पिछले 11सालों में सिवाए घोषणा के कुछ भी जारी नहीं किया है! हालत यह हैं कि कुछ राज्यों में तो आँगनवाड़ी वर्कर और हेल्पर को क्रमशः मात्र 5,500 रुपये व 2,850 रुपये "मानदेय" के नाम पर थमा दिये जाते हैं। यही नहीं, आँगनवाड़ी केन्द्रों में होने वाले ख़र्चे (जैसे कि रजिस्टर, खिलौने, चटाई इत्यादि), अन्नप्राशन और गोदभराई जैसे कार्यक्रमों के ख़र्चे भी आँगनवाड़ीकर्मियों के भरोसे ही छोड़ दिये जाते हैं। देश की राजधानी दिल्ली के आँगनवाड़ी केन्द्रों में हालात ऐसे हैं कि सर्दियों में छोटे बच्चों के बैठने तक का भी समुचित इन्तज़ाम सरकार की तरफ़ से नहीं होता। पोषाहार पर होने वाले ख़र्च की राशि तो हम पहले ही बता चुके हैं। पोषाहार की गुणवत्ता और मात्रा, दोनों ही असन्तोषजनक और अपर्याप्त है। सरकार प्राथमिक शिक्षा को भी नयी शिक्षा नीति 2020 के तहत आँगनवाड़ी वर्करों के ज़िम्मे सौंप कर उनके "स्वयंसेवा" का "लाभ" उठाना चाहती है और लेकिन आँगनवाड़ी केन्द्रों पर पोषाहार तक की समुचित पूर्ति नहीं कर रही है। **देशभर में आँगनवाड़ी वर्करों के 5 प्रतिशत और हेल्परों के 10 प्रतिशत पद खाली पड़े हैं वहीं बाल विकास परियोजना अधिकारी (सीडीपीओ) के 31 प्रतिशत पद खाली पड़े हैं।**

इसके बावजूद आँगनवाड़ी केन्द्रों में बच्चों के दाख़िले में बढ़ोत्तरी हुई है। **'अनुएल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट' 2024 के अनुसार 2018 में आँगनवाड़ी केन्द्रों में 3 वर्ष तक के 57.1 प्रतिशत बच्चों का नामांकन था और 2024 तक यह संख्या बढ़कर 66.8 प्रतिशत हो चुकी है। वहीं 4 वर्ष तक की आयु के 57.7 प्रतिशत और 5 वर्ष की आयु तक के 37 प्रतिशत बच्चों का आँगनवाड़ी केन्द्रों में नामांकन है।** बड़े बच्चों की कम भागीदारी का कारण यह है कि आँगनवाड़ी केन्द्रों में मिलने वाली शिक्षा अभिभावकों को असन्तोषजनक लगती है। कुल मिलाकर बात यह है कि आँगनवाड़ी केन्द्रों में मिलने वाली सुविधाओं में सुधार की ज़रूरत है, इस स्कीम के तहत काम करने वाली महिलाकर्मियों की स्थिति में सुधार की ज़रूरत है। आबादी के अनुसार भी देखा जाये तो आँगनवाड़ी केन्द्रों की संख्या कम ही है।

मोदी सरकार तो विश्व भूख सूचकांक के आँकड़े और मानकों को ही झूठा साबित करने पर अड़ी हुई थी। लेकिन आए दिन देशभर में आँगनवाड़ी केन्द्रों समेत मिड-डे-मील स्कीम के तहत मिलने वाले पोषाहार की "गुणवत्ता" की ख़बरें बाहर आ ही जाती हैं! आँगनवाड़ी जैसी तथाकथित "सामाजिक स्कीमों" का असल मक़सद इस व्यवस्था में पूँजीपतियों के हक़ में श्रमशक्ति का सस्ते से सस्ते दाम में पुनरुत्पादन करना है। सरकार इस कामचलाऊ "समाजसेवा" को भी इस तौर पर ही निभा रही है की समेकित बाल विकास परियोजना के 50 साल होने के बाद तक भारत का विश्व भूख सूचकांक स्कोर गोते ही लगा रहा है!

झूठे व खोखले जुमलों के अलावा भाजपा घरेलू कामगारों को कुछ नहीं दे सकती !

● बिगुल संवाददाता

सभी पूँजीवादी चुनावों में तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ मज़दूरों-मेहनतकशों को लुभाने के नये-नये हथकण्डे अपनाती रहती हैं । इस बार दिल्ली विधानसभा में भाजपा ने अपनी "फ्री रेवड़ियों" से मतदाताओं को खूब लुभाने की कोशिश की। भाजपा ने दिल्ली में अपनी चुनावी पारी शुरू करने के लिए तमाम जुमले फेंके। महिलाओं को 2500₹ देने का वायदा करना, कभी ग़रीब जनता को 'अटल कैण्टीन' के तहत 5 रुपये में भरपेट खाना देना, बुढ़ापा पेन्शन योजना दोबारा शुरू करने जैसे तमाम गुलाबी सपने भाजपा दिल्ली की जनता को दिखा रही थी। इस जुमलों की दौड़ कांग्रेस और आम आदमी पार्टी के नेता भी पीछे नहीं थे और भाजपा को पूरी तरह टक्कर दे रहे थे।

इसी कड़ी में भाजपा ने कुछ "वायदे" घरेलू कामगारों से भी किये, जो मज़दूर वर्ग के सबसे ज़्यादा शोषित, दमित और उत्पीड़ित हिस्सों में से एक हैं। भाजपा अपने घोषणापत्र में घरेलू कामगारों से "सम्मान" और "सुरक्षा" की बात कर रही थी और निम्नलिखित माँगे चुनाव जीतने पर लागू करने की बात कर रही थी :

1) घरेलू कामगारों के लिए 10 लाख का जीवन बीमा।

2) 5 लाख का दुर्घटना बीमा।

3) घरेलू कामगारों के बच्चों के लिए छात्रवृति।

4) 6 महीने का वेतन सहित मातृत्व अवकाश।

इन चार वायदों के आधार पर भाजपा दिल्ली में मौजूद लाखों घरेलू कामगारों का वोट हासिल करना चाहती थी। यह कुछ वैसे ही वायदे है जो भाजपा ने 2014 में सत्ता में आने से पहले किये थे। साथ में एक सवाल बनता ही है कि चुनाव के समय ही भाजपा को घरेलू कामगारों की याद क्यों आयी? इसका जवाब भी आसान है: ताकि उनका वोट लिया जा सके। केन्द्र में तो भाजपा की सरकार 10 सालों से मौजूद है। तो फिर इस मोदी सरकार ने पिछले 10 सालों में ऐसी योजना एक कानून बनाकर देश भर में लागू क्यों नहीं की? इन घोषणाओं की भी बात करें तो अगर भाजपा जीत भी जाती है तो इसे लागू नहीं करेगी। भाजपा की केन्द्र और साथ ही राज्य सरकारों का अब तक का ट्रैक रिकॉर्ड ही ऐसा है : मुँह फाड़कर वायदे करो, लेकिन उसे कभी लागू न करो! और बार-बार किये जाने वाले इस धोखे और वायदा-ख़िलाफ़ी का कुछ बुनियादी कारण भी हैं।

इसका सबसे पहला कारण यह है कि भाजपा असल में धन्नासेठों, कोठी मालिकों और पूँजीपतियों की पार्टी है, जो स्वयं घरेलू कामगारों के सबसे बड़े शोषक और उत्पीड़क हैं। आज मज़दूर वर्ग की सबसे बड़ी दुश्मन भाजपा ही है क्योंकि यह पूँजीपति वर्ग की फ़ासीवादी पार्टी है। ज़ाहिर है कि इसका यह अर्थ नहीं कि पूँजीपतियों के ही दम पर चलने वाली अन्य पूँजीवादी पार्टियाँ मसलन कांग्रेस, सपा, बसपा, राजद, आप और संशोधनवादी पार्टियाँ मसलन सीपीआई, सीपीएम, सीपीआई एमएल लिबरेशन मज़दूर वर्ग और मेहनतकशों की मित्र हैं; वे भी पूँजीपति वर्ग के ही किसी न किसी हिस्से की सेवा करती हैं। लेकिन एक फ़ासीवादी पूँजीवादी पार्टी के रूप में मज़दूर वर्ग के सबसे बर्बर, नंगे दमन और पूँजीपतियों की सबसे बेशर्म तरीक़े से सेवा करने का काम भाजपा के समान अन्य कोई धन्नासेठों की पार्टी आज नहीं कर सकती है, जब पूँजीपति वर्ग मन्दी से बिलबिला रहा है। यही भाजपा है जो मज़दूरों के सभी श्रम क़ानून ख़त्म कर चार लेबर कोड ला रही है, जिसके बाद मज़दूरों को लूटना और आसान हो जायेगा। चार लेबर कोड लागू होने के बाद महिलाओं से भी रात की शिफ्ट में भी काम करवाया जायेगा। ऐसी पार्टी से घरेलू कामगार क्या किसी ऐसे क़दम की उम्मीद कर सकती हैं, जो उनके लिए कल्याणकारी और लाभप्रद हो?

दूसरी बात, छात्रवृत्ति, जीवन बीमा और दुर्घटना बीमा की बात भी लफ़्फ़ाज़ी के अलावा कुछ नहीं है। आज सबके लिए निःशुल्क व समान शिक्षा और निःशुल्क बेहतर अस्पताल होने चाहिए ताकि हर इन्सान की बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो सकें। इसके उलट भाजपा निजीकरण की हिमायती है, जिससे पूँजीपतियों को फ़ायदा पहुँचाया जा सके। इसलिए भाजपा के यह सारे वायदे ख्याली पुलाव की तरह हैं। घरेलू कामगारों की असल माँग यानी मज़दूर का दर्जा देने की बात भाजपा नहीं करेगी, अन्य मज़दूरों की तरह घरेलू कामगारों के लिए भी क़ानून बने यह बात भाजपा नहीं करेगी। वह तो अन्य मज़दूरों के लिए श्रम कानूनों का सफ़ाया करने पर तुली है, तो घरेलू मज़दूरों को मज़दूर का कानूनी दर्जा देकर उनके लिए श्रम कानून

(पेज 4 पर जारी)

काम की माँग व बेरोजगारी भत्ते की माँग को लेकर मनरेगा यूनियन का प्रदर्शन

मनरेगा बजट में की गई कटौती पर मजदूरों ने रोष जताया

7 फरवरी (कैथल)। क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन द्वारा मनरेगा सप्ताह के अवसर पर आम बजट में कटौती व काम की माँग को लेकर कलायत बीडीपीओ कार्यालय पर प्रदर्शन किया गया। प्रदर्शन में गाँव चौशाला, सिमला, रामगढ़, पिंजुपुरा के मज़दूर शामिल रहे।

यूनियन के साथी अजय ने बताया कि 1 फरवरी को केन्द्रीय वित्त मन्त्री निर्मला सीतारमण ने आम बजट पेश किया। इस बजट ने एक फिर मोदी सरकार के मज़दूर विरोधी चेहरे को उजागर कर दिया। **कुल मिलाकर इस बजट में जहाँ अमीरों के लिए राहत है वहीं ग़रीबों के लिए आफ़त है। इस बार वित्त वर्ष 2025-26 में मनरेगा बजट के लिए आवण्टन 86,000 करोड़ किया गया है। अगर हम महँगाई दर से इसकी तुलना करें तो इस वर्ष मनरेगा बजट में 4,000 करोड़ की कटौती की गई है। वहीं ये मनरेगा बजट कुल बजट का मात्र 0.24% रह गया है।** इस बजट कटौती का सीधा अर्थ है मज़दूरों के कार्यदिवस की कटौती। मौजूदा बजट से सिर्फ़ मज़दूरों को 40 दिन ही रोजगार मिलेगा, कायदे से अगर सरकार को

100 दिन रोजगार देने का वादा पूरा करना है तो उसको 2.90 लाख करोड़ के बजट का प्रावधान करना चाहिए।

चौशाला की मेट मीना ने बताया कि मनरेगा कानून के तहत 100 दिन के रोजगार की गारण्टी दी गई है लेकिन कलायत ब्लॉक के मज़दूर परिवारों को मुश्किल से 30-40 दिन ही काम मिल पाता है। मनरेगा कानून के तहत काम के आवदेन के 15 दिनों के भीतर अगर काम नहीं मिलता है, तो आवदेक मज़दूरों को बेरोजगारी भत्ता देने का प्रावधान है। परन्तु कलायत कार्यालय का साफ कहना है बेरोजगारी भत्ता नहीं दिया जाएगा। ये साफ तौर पर रोजगार गारण्टी के तहत काम ना देना

व बेरोजगारी भत्ता ना देना मज़दूरों के अधिकारों का उल्लंघन है। आज हर जगह श्रम क़ानूनों की धजियाँ उड़ाते हुए मज़दूरों से हाड़-तोड़ मेहनत करवाई जा रही है। लम्बे चौड़े दावे करने वाली मोदी सरकार मनरेगा मज़दूरों को किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं दे पा रही।

अन्य गाँवों के मज़दूरों ने बताया कि यूँ तो सरकार मनरेगा में 100 दिन के काम की गारण्टी देती है लेकिन वह अपनी ज़ुबान पर कहीं भी खरी नहीं उतरती। मनरेगा में पहले से ही बजट की कमी के साथ धाँधली होने का आरोप लगता रहता है। अब गाँव में मज़दूरों की संख्या बढ़ने से मनरेगा पर भार बढ़ना लाज़िमी था। ऐसे में सरकार को कायदे से मनरेगा के बजट, कार्यदिवस व दिहाड़ी में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए थी। लेकिन मोदी सरकार ने उल्टा मनरेगा बजट में कटौती कर मज़दूरों के हालातों को और बदतर बनाने की योजना बना रखी है।

वहीं मनरेगा यूनियन हरियाणा में मारुति-सुज़ुकी के संघर्षरत मज़दूरों के साथ एकजुटता प्रदर्शित करती है। ज्ञात हो कि मानेसर में मारुति-सुज़ुकी के अस्थायी मज़दूर अपने बेहद वाजिब और जायज़ माँगों को लेकर संघर्षरत है लेकिन हरियाणा पुलिस-प्रशासन मज़दूर आन्दोलन का दमन कर रहा है। हम संघर्षरत मारुति-सुज़ुकी मज़दूरों का समर्थन करते है और राजकीय दमन की निन्दा करते है।

मनरेगा मज़दूरों के बाबत क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन, प्रदर्शन के माध्यम से केन्द्र सरकार व राज्य सरकार के समक्ष अपनी निम्नलिखित माँगें रख रही है।

1- जिन गाँव / मेटों को लम्बे समय से काम नहीं मिला है उनका मस्टररोल निकाला जाए व मनरेगा का काम सुचारू रूप से चालू करवाया जाये।

2- मनरेगा के बजट में बढ़ोत्तरी की जाये व मनरेगा मज़दूरों की दिहाड़ी 1160 रुपये की जाये।

3- सभी गाँव के मेटों के लम्बित बकाये का भुगतान किया जाए।

4- 15 दिन के अन्दर काम मुहैया ना करवाने की सूरत में बेरोजगारी भत्ते का भुगतान करना सुनिश्चित किया जाये।

– बिगुल संवाददाता

झूठे व खोखले जुमलों के अलावा भाजपा घरेलू कामगारों को कुछ नहीं दे सकती !

(पेज 3 से आगे)

क्या लायेगी? इसलिए भाजपा के वायदों पर किसी भी घरेलू कामगार साथी को यक़ीन नहीं करना चाहिए।

भाजपा घरेलू कामगारों के "मान सम्मान" का कितना ख़्याल रखती है इसका अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है जब भाजपा, झारखण्ड के महिला मोर्चे की नेता सीमा पात्रा ने 29 वर्षीय घरेलू कामगार को बुरी तरीके से बेल्ट और रॉड से पीटा था, नतीजतन घरेलू कामगार को अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ा था। यह केवल एक उदाहरण है। भाजपा के तमाम नेता आये दिन घरेलू कामगारों का उत्पीड़न और अपमान करने के लिए सुर्खियों में आते रहते हैं। इसकी वजह है: फ़ासीवादी मज़दूरों को इन्सान मानते ही नहीं हैं। वे उन्हें जानवर या अपना पालतू समझते हैं। यही वजह है कि इस तरह के बर्बर मामलों में सबसे ज़्यादा भाजपा के नेता व समर्थक ही फँसते हैं। न जाने कितनी घटनाएँ सोशल मीडिया या अख़बारों तक पहुँच भी नहीं पाती है।

दिल्ली के चुनावों में भाजपा अपनी नैया पार लगाने के लिये घरेलू कामगारों के लिए भी जुमले फेंक रही थी। अब भाजपा की सरकार दिल्ली में तमाम चुनावी जोड़-तोड़, चुनावी घपलों, चुनाव आयोग के जादुई स्पर्श और आम आदमी पार्टी की नालायकी और जनविरोधी हरक़तों से पैदा हुए गुस्से के कारण जीत चुकी है। दिल्ली में हम घरेलू कामगारों की संख्या लगभग 8 लाख है, इसलिए हमें लुभाने के लिए तमाम घोषणाएँ की जा रही थीं। भाजपा भी कर रही थी व अन्य पूँजीवादी पार्टियाँ भी कर रही थीं। बता दें कि किसी भी भाजपा शासित राज्य में सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बावजूद भी घरेलू कामगारों के लिए कोई भी क़ानून नहीं बनाया गया है, यहाँ तक कि हमें मज़दूर का दर्ज़ा तक नहीं दिया गया। इसलिए दिल्ली में भी भाजपा घरेलू कामगारों के लिए कुछ नहीं करने वाली है।

अब जबकि दिल्ली में भाजपा की सरकार बन चुकी है तो घरेलू कामगारों को किये गये वायदों के सवाल पर घरेलू कामगारों को भाजपा सरकार को घेरना होगा और जवाबदेही लेनी होगी। लड़कर ही हम अपने हक़ हासिल कर सकते हैं।

केन्द्रीय बजट 2025 मनरेगा मज़दूरों के साथ एक बार फ़िर से छल करती मोदी सरकार

● अजय

मोदी सरकार की तरफ़ से वित्त मन्त्री सीतारमण ने केन्द्रीय बजट पेश किया। इस बजट में एक बार फ़िर मनरेगा मज़दूरों को दरकिनार किया गया। केन्द्र सरकार ने इस बार के मनरेगा बजट में भी पिछली बार जितनी ही राशि आवंटित की है, उसमें कोई बढ़ोतरी नहीं की है। केन्द्र सरकार ने बजट में मनरेगा के लिए केवल 86,000 करोड़ रुपये आवंटित किया है। किन्तु बीते साल भर में बढ़ी महँगाई के लिहाज़ से देखें तो यह बजट पिछले वित्तीय वर्ष की तुलना में प्रभावी रूप से 4000 करोड़ रुपये कम है। मतलब पिछले वित्तीय वर्ष 2024-25 में जो बजट आवण्टित था इस बार भी उतनी ही राशि आवण्टित होने के बावजूद यह राशि प्रभावी रूप से कम है। यह योजना नियमित वेतन सूचकांकीकरण (यानी बढ़ती महँगाई के अनुरूप बजट का विस्तार) की भी प्रतीक्षा कर रही है, और इस समायोजन को भी ध्यान में नहीं रखा गया है। जीडीपी के प्रतिशत के रूप में बात करें तो यह आवण्टन पिछले वित्तीय वर्ष में 0.26% की तुलना में घटकर मात्र 0.24% रह गया है।

गौरतलब है कि यह योजना पहले से ही 9,860 करोड़ रुपये के घाटे में चल रही थी, जिसमें 6,949 करोड़ रुपये का लम्बित वेतन है। ऐसे में ज़रूरत थी कि इस बार का बजट और बढ़ा कर आवण्टित किया जाये। किसी भी बजट में आवण्टित धनराशि समाप्त होने की सूरत में संशोधित आवण्टन किया जाता है। किन्तु वित्त वर्ष 2024-25 में धनराशि समाप्त होने के बावजूद कोई संशोधित आवण्टन नहीं किया गया है। एक प्रवृत्ति के तौर पर ऐसा हर साल होता है कि बजट का औसतन 20% हिस्सा पिछले वित्तीय वर्ष के बकाए को चुकाने में ख़र्च हो जाता है। उदाहरण के लिए पिछले वित्त वर्ष में पश्चिम बंगाल का बकाया क़रीब 7,500 करोड़ रुपये है। यह पिछला बकाया मौजूदा आवण्टित बजट में से ही जाएगा, नतीजतन मौजूदा बजट राशि घट कर केवल 70,000 करोड़ रुपये तक रह जायेगी।

कम बजटीय आवण्टन का प्रभाव व्यक्ति दिवसों में कमी के रूप में दिख रहा है जो 2023-24 में 312.37 करोड़ से घटकर फरवरी 2025 तक 239.67 करोड़ रह गया है, जबकि प्रति परिवार औसत कार्यदिवस 52.08 से घटकर मात्र 44.62 रह गया है। सरकार का सौ दिनों का काम देने का वायदा हवा ही रहा। 100 दिन का काम पूरा करने वाले परिवारों की संख्या सिर्फ़ 20,77,014 रही।

ऊपर दिये गए आँकड़ों से यह साफ़ दिखता है कि सरकार का मनरेगा के तहत अपने कानूनी दायित्वों को पूरा करने का कोई इरादा नहीं है। इस अपर्याप्त बजट का अनिवार्य रूप से तीन परिणाम होंगे। पहला, मज़दूरी भुगतान में भारी देरी, जिससे लाखों ग्रामीण मज़दूरों की आर्थिक स्थिति बिगड़ेगी। दूसरा, काम की माँग का दमन होगा, या उसे दबाया जायेगा, इस तरह से लोगों को रोज़गार के उनके अधिकार से वंचित किया जायेगा। तीसरा, मनरेगा के तहत होने वाले ढाँचों के निर्माण की गुणवत्ता में गिरावट, जिससे ग्रामीण बुनियादी ढाँचा ही कमज़ोर होगा।

मारुति सुज़ुकी के अस्थायी मज़दूरों का संघर्ष ज़िन्दाबाद!

30 जनवरी के प्रदर्शन पर दमन से पुलिस-प्रशासन और मारुति सुज़ुकी प्रबन्धन का गठजोड़ एक बार फिर से नंगा!

संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए व्यापक एकता और सही दिशा का सवाल अब अहम बन चुका है!

● यूनियन संवाददाता

ताज़ा घटनाक्रम का ब्यौरा

जैसा कि आप सब जानते हैं 30 व 31 जनवरी को हरियाणा के आईएमटी मानेसर में मज़दूरों के प्रदर्शन और गुड़गाँव के श्रम विभाग के समक्ष होने वाली त्रिपक्षीय बैठक को मारुति सुज़ुकी प्रबन्धन और प्रशासन ने मिलकर नाक़ाम करने की पूरी कोशिश की। इसके दमन की शुरुआत मानेसर में पुलिस द्वारा प्रदर्शन के ठीक एक दिन पहले यानी 29 जनवरी को ही कर दी गयी थी। जिस जगह पर मज़दूरों को इकट्ठा होना था उसे पुलिस ने छावनी में तब्दील कर दिया था। यानी 2012 के बर्ख़ास्त मज़दूरों के धरनास्थल पर लगे तम्बू, बैनर, खाने-पकाने के समान सहित निजी वस्तुओं को भी ज़बरदस्ती उठा लिया गया। वहाँ मौजूद साथियों को पूरे दिन डिटेन रखा गया और शाम में छोड़ा गया। प्रदर्शन वाले दिन भी यानी 30 जनवरी को 76 साथियों को पकड़ कर पूरे दिन डिटेन रखा गया। हज़ारों संख्या में जुटे मज़दूरों को पुलिस लाठीचार्ज कर धरना स्थल से दूर भगाती रही और एकजगह शान्तिपूर्वक धरना स्थल पर इकट्ठा नहीं होने दिया गया। गौरतलब बात यह है कि इसकी लिखित अनुमति मज़दूरों ने 27 जनवरी को ही ले ली थी। इसके बावजूद पुलिस ने मारुति सुज़ुकी प्रबन्धन के इशारों पर कोर्ट द्वारा दी गयी अनुमति का उल्लंघन किया और मज़दूरों को एक जगह इकट्ठा नहीं होने दिया। पुलिस बर्बरता का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि जो भी व्यक्ति धरना स्थल के पास बैग लिये दिख रहा था, उसे मारुति सुज़ुकी का मज़दूर समझ कर पुलिस डरा-धमका रही थी।

इसके बाद 31 जनवरी को गुड़गाँव के लघु सचिवालय परिसर में स्थित श्रम विभाग में 48 मज़दूरों को डिटेन किया गया। डिटेन किये गये साथियों में AICWU से साथी शाम मूर्ति भी शामिल थे। क़रीब 200 मज़दूर श्रम विभाग के दफ़्तर में होने वाली त्रिपक्षीय बैठक में शामिल होने से पहले अपनी बैठक कर रहे थे। पुलिस ने - बी.एन.एस 163 (जिसे पहले 144 के नाम से जाना जाता था) का हवाला देकर मज़दूरों को खदेड़ दिया। यह करने के पीछे पुलिस का मक़सद साफ़ था : यह सुनिश्चित करना कि मज़दूर इकट्ठा होकर त्रिपक्षीय बैठक में अपनी माँगों पर श्रम विभाग की मौजूदगी में प्रबन्धन के साथ आमने-सामने बात न कर सकें। डिटेन किये गये साथियों को जनदबाव के कारण उसी दिन देर रात को छोड़ दिया गया था। लेकिन यह पूरा घटनाक्रम दर्शाता है कि मारुति सुज़ुकी मैनेजमेण्ट और प्रशासन को अस्थायी मज़दूरों के एकजुट होने से कितना डर लगता है। साथ ही यह हमारे प्रदर्शन करने-एकजुट होने के संवैधानिक अधिकार पर भी हमला है।

संघर्ष की शुरुआत

पहले 5 जनवरी को और फिर 10 जनवरी को मारुति सुज़ुकी सुज़ुकी कम्पनी में कार्यरत और काम कर चुके हज़ारों अस्थायी मज़दूर अपनी माँगों के लेकर गुड़गाँव के डीसी ऑफिस पर इकट्ठा हुए। यह इस बात को साबित कर रहा है कि ठेका, अप्रेण्टिस, ट्रेनी समेत तमाम अस्थायी मज़दूर बेरोज़गार व ठेका प्रथा से किस क़दर त्रस्त हैं। कम्पनी में विभिन्न तरीके से लूट-शोषण और दमन का शिकार है। ऐसे में बढ़ती जा रही बेरोज़गारी और अस्थायी रोज़गार के दौर में मज़दूर स्थायी रोज़गार पाने का कोई मौका नहीं गँवाना चाहते हैं, जबकि स्थायी काम पर स्थायी रोज़गार हमारा अधिकार है। पहले क़दम के तौर पर मारुति सुज़ुकी के अस्थायी मज़दूरों ने अपना माँगपत्रक पेश किया। 5 और फिर 10 जनवरी को प्रदर्शन में 3-4 हज़ार की संख्या में मज़दूर एकत्रित हुए, जिसका अंदाजा मज़दूरों और पुलिस-प्रशासन को भी नहीं था। तब मज़दूरों ने गुड़गाँव के सचिवालय में डीसी आफिस और श्रम विभाग को माँग पत्रक और ज्ञापन सौंपा था। साथ ही गुड़गाँव श्रम विभाग के साथ-साथ चण्डीगढ़ श्रम विभाग/को भी लेटर दिया गया है। 31 जनवरी तहत त्रिपक्षीय वार्ता यानी श्रम विभाग के समक्ष मारुति सुज़ुकी-सुज़ुकी कम्पनी और मज़दूरों का प्रतिनिधि मण्डल का मिलना तय हुआ था। इसे लेकर मारुति सुज़ुकी प्रबन्धन और पुलिस-प्रशासन पहले से सतर्क हो गया और मौके की तलाश में ही था। प्रबन्धन को पता था कि अगर अस्थायी मज़दूरों को एकजुट होने से नहीं रोका गया तो पूरे ऑटोमोबाइल और गुड़गाँव से लेकर जयपुर तक औद्योगिक पट्टी का मज़दूर सड़कों पर आना शुरू कर देंगे। फिर 30 और 31 को हमें एकजुट होने नहीं दिया गया, डिटेन करने के साथ-साथ कई जगह मज़दूरों पर लाठीचार्ज किया गया।

मुख्य बात यह है कि बढ़ती बेरोज़गारी के आज के दौर में स्थायी रोज़गार की गारण्टी, ठेका प्रथा का समाप्ति, अस्थायी रोज़गार से मुक्ति का सवाल एक बार फिर से सामने आया है। 'जब चाहे रखो और जब चाहे काम से निकालो' (हायर एण्ड फायर) की नीति के मुखर विरोध में एकजुटता का स्वर भी उभरा है। लेकिन गुस्से की इन लहरों को सही दिशा में विकसित करके ही इसे मारुति सुज़ुकी सुज़ुकी के कम्पनी प्रबन्धन, ठेकेदारों समेत श्रम विभाग शासन-प्रशासन व सरकारों को ठीक से घेरा जा सकता है और अपने हक़-अधिकारों की लड़ाई को मज़बूत तरीके से आगे बढ़ाया जा सकता है। लेकिन आगे बढ़ने से पहले बुनियादी चीज़ को समझना बेहद जरूरी है।

मालिकों के मुनाफ़े की अन्धी हवस का बुनियादी कारण क्या है?

इसका बुनियादी कारण है कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूरों की मेहनत को लूटकर मुनाफ़ा बटोरने में पूँजीपतियों के मुनाफ़े की औसत दर कम होती जाती है। इससे बीच-बीच में आर्थिक संकट गहराता है और अल्पकालिक मुनाफ़े के दौर भी आते रहते हैं। देश के सभी सेक्टरों में विभिन्न तरीके और स्तर पर इसका असर नज़र आ रहा है। ऐसे में पूँजीपति वर्ग अपने गिरते मुनाफ़े का बोझ मज़दूरों पर डालने के लिए नये-नये तरीके निकालता रहता है और नतीज़तन हर मालिक/कम्पनी प्रबन्धन सस्ते और कच्चे मज़दूरों की भर्ती के लिए विभिन तरीके से शोषण, दमन और औद्योगिक आतंक को बढ़ाते चले जा रहे हैं। समूचे ऑटोमोबाइल पट्टी में भी सारी कम्पनियाँ मन्दी से निपटने और अपने मुनाफ़े की दर को बढ़ाने के लिए विभिन्न रूपों में अस्थायी मज़दूरों का शोषण कर रही हैं और अस्थायी मज़दूरों की संख्या को बढ़ाते हुए उनके सभी श्रम अधिकार छीन रही हैं। मोदी सरकार व अन्य सभी राज्य सरकारें इन कम्पनियों का इसमें पूरा साथ दे रही हैं।

24 फ़रवरी को एक बार फिर से आईएमटी मानेसर चलो की घोषणा और जुटान की चुनौतियाँ

मारुति सुज़ुकी अस्थायी मज़दूर संघ द्वारा 24 फ़रवरी को दोबारा 'मानेसर चलो' की ऐलान कर दिया गया है। उससे पहले 17 फ़रवरी को तमाम मारुति सुज़ुकी में काम कर चुके और कर रहे मज़दूरों के हस्ताक्षर किये गये फार्म प्रधानमन्त्री व श्रम विभाग को सौंपने का फैसला किया गया है। बेशक हमें अधिकतम संख्या में हस्ताक्षर जुटाने होंगे ताकि अपने क़ानूनी पक्ष को मज़बूत किया जा सके और साथ ही आगामी 24 फ़रवरी को अधिक से अधिक मज़दूरों को मानेसर में जुटाना होगा ताकि कम्पनी प्रबन्धन, श्रम विभाग, पुलिस-प्रशासन और सरकार के गठजोड़ और उसकी तानाशाही का मुक़ाबला किया जा सके। लेकिन जिस तरह से पिछली बार प्रबन्धन के हितों के लिए काम करने वाली पुलिस-प्रशासन ने बार-बार खदेड़ने, डिटेन करने व लाठीचार्ज करके आतंक का माहौल पैदा किया है उसका मुक़ाबला व्यापक मज़दूर आबादी विशेष तौर पर अस्थायी मज़दूर आबादी को शामिल करके ही किया जा सकता है। ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (AICWU) इस कार्यक्रम को सफ़ल बनाने के लिए पूरी तरह से साथ है। 10, 30 और 31 जनवरी को भी समर्थन में पर्चा निकाला गया था और यूनियन के फेसबुक पेज से प्रदर्शन में शामिल होने का आह्वान लगातार किया गया था और अब भी किया जा रहा है। 31 जनवरी को AICWU के साथी गिरफ़्तार भी हुए थे। AICWU आगे भी समर्थन और संघर्ष में शामिल रहेगी।

आज आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए एक तो मारुति सुज़ुकी में काम करने वाले सभी अस्थायी और स्थायी मज़दूरों से सम्पर्क करने की ज़रूरत तो है ही। साथ ही पिछले 2 दशकों से स्थायी और अस्थायी दोनों मज़दूरों के संघर्षों से सही सबक निकालने की भी ज़रूरत है। अभी तमाम कम्पनियाँ स्थायी-अस्थायी मज़दूरों को निकालने और यूनियनों को पंगु बनाने में लगी हुई हैं। चार नये लेबर कोड के ज़रिये यूनियन-हड़ताल समेत स्थायी रोज़गार, उचित वेतन व सभी श्रम क़ानून के अधिकारों पर हमला हो चुका है। वैसे पहले से ही ट्रांसफर, आंशिक या पूर्ण बन्दी, झूठे इल्ज़ाम लगाकर अनुशासनात्मक कार्यवाही, सालों काम करवाने के बाद फ़र्ज़ी दस्तावेज़ों आदि बहानों से लगातार यह काम जारी है। मानेसर में 2012 के बर्ख़ास्त मारुति सुज़ुकी के स्थायी मज़दूरों का धरना, बेलसोनिका में यूनियन के पंजीकरण का रद्द करके यूनियन बॉडी को झूठी अनुशासनात्मक कार्यवाही के ज़रिये बाहर करना, नीमराना की हीरो की यूनियन पर ताज़ा हमला, गुड़गाँव में मुंजाल शोवा और सनबीम में मज़दूरों की आंशिक बन्दी के नाम पर छँटनी करके ठेका मज़दूरों की भर्ती। कम्पनी द्वारा दमन के यह सब उदाहरण हमारे सामने हैं। इन सबके ख़िलाफ़ एक सशक्त व मज़बूत ट्रेड यूनियन आन्दोलन खड़ा करना आज की ज़रूरत है। हम जानते हैं कि एक तरफ़ ऑटो सेक्टर के सभी अस्थायी मज़दूरों की एकजुटता और दूसरी तरफ़ अन्य सेक्टरों के अस्थायी तथा स्थायी मज़दूरों की एकजुटता स्थापित करना अभी बाक़ी है। विभिन्न इलाकों व सेक्टर के मालिक/कम्पनी प्रबन्धन तो अपनी-अपनी एसोसिएशनों के ज़रिये एकजुट हैं और उनका शासन-प्रशासन के साथ गठजोड़ भी है। लेकिन मज़दूरों का व्यापक स्तर पर एकजुट हो पाना अभी बाक़ी है।

दूसरी बात, आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए ऑटोमोबाइल सेक्टर के सभी मज़दूरों को भी इसमें शामिल करना होगा। हम लोग जानते हैं कि 80-90 प्रतिशत आबादी तमाम अस्थायी मज़दूरों यानी ठेका,

(पेज 6 पर जारी)

मारुति सुज़ुकी के अस्थायी मज़दूरों का संघर्ष ज़िन्दाबाद!

अप्रेण्टिस, फिक्सड टर्म ट्रेनी, नीम ट्रेनी, कैज़ुअल, टेम्परेरी मज़दूर आदि विभिन्न श्रेणी के अस्थायी मज़दूर हैं। इनकी भी वहीं माँगे हैं जो मारुति सुज़ुकी-सुज़ुकी के तमाम अस्थायी मज़दूरों की माँगें हैं। 2023 से क़रीब 10 लाख अस्थायी मज़दूरों को इस्तेमाल करके बाहर किया जा चुका है। वे ऑटोमोबाइल की किसी दूसरी कम्पनी जैसी हीरो, होण्डा या उन्हीं की वेण्डर कम्पनी या किसी अन्य जगह काम कर रहें हैं या एक आबादी ऐसी है जो अभी तक दोबारा रोज़गार हासिल नहीं कर पायी है। ऐसे बाहर कर दिये गये मज़दूरों की संख्या प्रदर्शन में सबसे ज़्यादा है। मारुति सुज़ुकी प्लाण्ट में फ़िलहाल काम करने वाले सभी अस्थायी मज़दूर आन्दोलन में शामिल नहीं हुए हैं। अन्दर कार्यरत मज़दूर अब अपने भविष्य के प्रति भी सशंकित हो चुके हैं और अभी अपना अस्थायी रोज़गार भी छिनने से भी डर रहे हैं। इन मज़दूरों को शामिल करने के लिए कम्पनी की यूनियनों को माँगपत्रक और संघर्ष के समर्थन में साथ लेने की कोशिश जारी रखनी चाहिए। स्थायी मज़दूर यूनियनों को समझ लेना चाहिए कि छँटनी की तलवार आपके सिर पर भी लटक रही है। जिससे बचने का रास्ता तत्काल मारुति सुज़ुकी-सुज़ुकी के तमाम स्थायी-अस्थायी मज़दूरों की एकता स्थापित करना ही हो सकता है। तमाम अस्थायी मज़दूरों को भी समझ लेना चाहिए कि 80-90 प्रतिशत आबादी मारुति सुज़ुकी-सुज़ुकी समेत पूरे सेक्टर में ठेका/अस्थायी की है। वर्षों तक अस्थायी मज़दूरों की उपेक्षा करने वाले स्थायी मज़दूरों व उनके यूनियनों तथा संघों को भी यह बात समझ में आ रही है कि अस्थायी मज़दूरों को संगठित किये बिना और आन्दोलन में उनकी माँगों को सबसे ऊपर रखे बिना उनके मसलों का कोई समाधान नहीं हो सकता है। लेकिन सबसे पहले अस्थायी मज़दूरों को अपनी स्वतन्त्र यूनियनों में संगठित होना होगा जिनकी बागडोर और नेतृत्व पूरी तरह से स्वयं अस्थायी मज़दूरों के ही हाथों में हो। इन्हीं चीजों को समझ कर ही तमाम ठेका/अस्थायी तथा स्थायी मज़दूरों को एकता क़ायम की जा सकती है।

सेक्टर या पेशा आधारित एकता स्थापित करना तत्काल बेहद ज़रूरी है

चूँकि हम ऊपर बात कर चुके हैं कि मारुति सुज़ुकी-सुज़ुकी के अस्थायी मज़दूरों के मुद्दे महज़ मारुति सुज़ुकी सुज़ुकी तक सीमित नहीं है बल्कि पूरे ऑटो सेक्टर के मज़दूरों की माँग हैं। पिछले तमाम अस्थायी मज़दूरों के संघर्ष हो या स्थायी मज़दूरों के संघर्ष, कई जुझारू संघर्षों के बावजूद ये संघर्ष अपनी-अपनी कम्पनी या प्लाण्ट तक ही सीमित रहे। मालिक के इशारों पर काम करने वाले श्रम विभाग व कोर्ट ने इसे भटकाने-लटकाने का काम किया। वही पुलिस ने इसे आतंक पैदा करके दबाने का ही काम किया है। यानी यह बात भी साफ़ हो चुकी है कि अलग-अलग कारख़ानों जैसे: मारुति सुज़ुकी-सुज़ुकी, होण्डा, हीरो, बजाज जैसी दर्जनों मदर कम्पनियों तथा हीरो, रिको, हेमा, बेलसोनिका, सनबीम, मुन्जाल शोवा, सत्यम, ऐवटिव, जेएनएस जैसी सैंकड़ों वेण्डर कम्पनियों के विभिन्न प्लाण्टों के स्थायी व अस्थायी मज़दूरों के लिए महज़ अकेले-अकेले लड़कर जीत हासिल कर पाना बेहद-बेहद मुश्किल हो चुका है। लेकिन मज़दूरों का व्यापक स्तर पक एकजुट होना अभी बाक़ी है। अभी मारुति सुज़ुकी सुज़ुकी के अस्थायी मज़दूरों के एकजुट होने की शुरुआत हुई है। जिसका हम लोग समर्थन भी करते हैं। बेशक बड़े संघर्ष की शुरुआत छोटे-छोटे क़दमों से ही होती है। लेकिन इसको मुक़ाम तक ले जाने के लिए सही दिशा के साथ-साथ एकता को व्यापक और मज़बूत करना भी उतना ही ज़रूरी है।

ट्रेड यूनियन जनवाद, पारदर्शिता और संघर्ष की बागडोर का सवाल

संघर्ष का नेतृत्व अस्थायी मज़दूरों के हाथ में ही होना चाहिए और विभिन्न यूनियनों-संगठनों के संघर्ष के ज़रिये अर्जित अनुभव का सही तालमेल के साथ इस्तेमाल करके ही आन्दोलन को आगे बढ़ाया जा सकता है। अस्थायी मज़दूरों के नेतृत्वकारी कोर को अपने प्लाण्ट तक सीमित करके और संघर्ष की बागडोर अपने हाथ में न लेकर किसी परमानेण्ट मज़दूरों के यूनियन या कमेटी को सौंपना अस्थायी मज़दूरों के लिए घातक होगा। यह कभी भूलना नहीं चाहिए कि पिछले 12-13 वर्षों से मारुति सुज़ुकी के परमानेण्ट मज़दूर अपनी माँगों को लेकर लड़ रहे थे, लेकिन अस्थायी मज़दूरों के सवाल पर ज़ुबानी जमाख़र्च के अलावा, उनको संगठित करने और उनकी माँगों को प्राथमिकता देने के लिए कोई क़दम नहीं उठाया गया। 2011-12 से ही AICWU यह बात उठाती रही थी कि आन्दोलन में न सिर्फ़ अस्थायी मज़दूरों को साथ लिए बिना, बल्कि सबसे पहले उनकी माँगों को सबसे ऊपर रखे बिना, परमानेण्ट मज़दूरों के मसलों का भी कोई समाधान नहीं हो सकता है। जनवरी 2025 में जाकर, मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के संघर्ष के 12-13 वर्ष बीतने के बाद, अस्थायी मज़दूरों की सुध ली गयी, वह भी तब जबकि उनको साथ लिए बिना चल रहा संघर्ष एक बन्द गली में पहुँचकर बिखराव का शिकार हो चुका था। आज भी अस्थायी मज़दूरों को अपने संघर्ष की बागडोर सबसे पहले पूर्णत: अपने हाथों में लेनी होगी, अन्यथा माँगों को जीतना तो दूर, आन्दोलन का बहुत दूर तक जाना भी मुमकिन नहीं होगा। फ़ैसला लेने की ताक़त भूतपूर्व परमानेण्ट मज़दूरों के हाथों में नहीं, बल्कि स्वयं अस्थायी मज़दूरों के हाथों में होगी, तभी आन्दोलन विजय की दिशा में आगे बढ़ सकता है। आज भी समर्थकों व मौजूदा संघर्ष में शामिल यूनियनों, मज़दूर संगठनों के प्रति बहुत ही संकीर्ण व नकारने का नज़रिया और व्यवहार सामने आया है। इससे पहले ही बहुत नुक़सान हो चुका है। इसकी बजाय व्यापक मज़दूरों के हितों को केन्द्र में रखकर कर आगे बढ़ना होगा।

व्यापक एकता के लिए अस्थायी मज़दूरों के संघर्ष का समर्थन करने वाले और संघर्ष में शामिल मज़दूर यूनियनों, मज़दूरों संगठनों, अन्य जनसंगठनों और न्यायप्रिय और इन्साफ़पसन्द नागरिकों को संघर्ष में खुले दिल से शामिल करना होगा। किसी भी तरह के संकीर्ण सांगठनिक हितों-स्वार्थों, प्रिय चेहरों-चहेतों को प्राथमिकता देने और दूसरे संगठन के प्रति संकीर्ण रवैया रखने का नतीज़ा अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारना होगा। विभिन्न संघर्षशील और अनुभवी यूनियनों के समर्थन और सक्रिय भागीदारी के बिना आजतक कोई आन्दोलन आगे नहीं बढ़ा है। किसी चहेती कमेटी/संगठन के प्रति उदार या अन्य संगठन/यूनियन के प्रति पूर्वाग्रहित होकर उनके ख़िलाफ़ कुत्सा-प्रचार करना, उसके सहयोग-समर्थन, संघर्ष में शामिल और वर्षों से काम कर रहे संगठनों के कार्यों की उपेक्षा करना, इससे पूरे आन्दोलन को ही नुकसान होगा और यह अपनी ताक़त को ख़ुद ही कम करने के समान है।

पहले भी मज़दूर आन्दोलन में शामिल ऐसी धाराएँ मज़दूर या ट्रेड यूनियन संगठनों से निम्नस्तरीय एकता बनाते हैं और ऐसी प्रवृतियों को हवा देते है। अन्त में आन्दोलन अन्धी गलियों में भटक जाते हैं, जिसके नतीज़े पहले के भी मज़दूर संघर्षों में देख चुके हैं। अन्धी गलियों में उलझने पर मज़दूर एकतरफ़ छँटनी का शिकार होते हैं और ब्लैक लिस्ट होकर बेरोज़गारी का दंश झेलते हैं और दूसरी तरफ़ दशकों कोर्ट के चक्कर काट कर मज़दूर घर बैठ जाते हैं या किसी झूठी उम्मीद में चप्पलें घिसते रहते हैं। इसका तात्कालिक तौर पर आन्दोलन को नुक़सान होता ही है और दूरगामी तौर पर वर्गीय हितों को बहुत नुक़सान पहुँचता है। वहीं इसका फ़ायदा मुख्य तौर पर मालिक वर्ग को ही होता है।

यह बात हम लोग 2012 से ही कह रहे हैं। पिछला मारुति सुज़ुकी का आन्दोलन हो या होण्डा टपूकड़ा का या होण्डा मानेसर के जुझारू संघर्ष क्यों न रहे हों, इन सभी में इन्हीं दिक्कतों की वजह से अन्तत: हम सफलता तक नहीं पहुँच पाये। अपने आन्दोलन की बागडोर अपने हाथों में न लेकर अन्य किसी को सौंप देने तथा आन्दोलन को अपने प्लाण्ट कम्पनी तक सीमित रखने, दूसरे जुझारू संगठनों के साथ सही तरीके से तालमेल न करना, यह पिछले के सभी आन्दोलनों में कमी रही है। यह आन्दोलन के भीतर ठेका प्रथा है : यानी, अपने आन्दोलन की बागडोर अपने हाथों में लेने के बजाय उसका ठेका अपने नेतृत्व व प्रधानी को क़ायम रखने की इच्छा रखने वाले किसी गुट के हाथों में सौंप दिया जाय। मारुति सुज़ुकी के मौजूदा अस्थायी मज़दूरों के आन्दोलन को इस कमी से बचना होगा, उसे दूर करना होगा। अन्यथा, सफलता तक पहुँच पाना असम्भव होगा।

मज़दूर आन्दोलन को आगे कैसे बढ़ाया जाये? तत्काल क्या किया जाये?

कुल मिलाकर हमें तत्काल सेक्टरगत और इलाकाई एकता की ज़रूरत है। ऐसे में हम मज़दूर सभी बिखरे हुए संघर्षों का साझा मंच बनाकर जुझारू तरीके से संघर्ष को आगे बढ़ा जा सकते हैं। तभी मालिकों के मुनाफ़े के लिए जारी शोषण, दमन व आतंक पर रोक लगा सकते हैं। तभी हम न्याय हासिल कर सकते हैं। अस्थायीकरण पर रोक लगवा सकते हैं। स्थायी काम पर ग़ैर-क़ानूनी ठेका प्रथा पर रोक लगवा सकते हैं। 24 फ़रवरी के प्रदर्शन के बाद आन्दोलन का अगला क़दम सभी अस्थायी मज़दूरों के साझा माँगपत्रक के आधार पर ऑटोमोबाइल सेक्टर के समस्त अस्थायी मज़दूरों को एकजुट करना ही हो सकता है। यानी समूची इण्डस्ट्री के अस्थायी मज़दूरों की एकता के आधार पर आन्दोलन को आगे बढ़ाना होगा। इसके अलावा, तमाम संघर्षरत यूनियनों को भी एक साझा मंच पर आने की ज़रूरत है, ताकि संघर्षों को पूरी ताक़त से आगे बढ़ाया जा सके। अगर इन सब पर जल्द ही कुछ ठोस तरीके से काम नहीं किया गया तो फिर काफ़ी देर हो जायेगी! अतः आप सब मज़दूरों से अपील करेंगे कि हमारी बातों पर गौर करें, ताकि मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों से शुरू हुई इस एकता को पूरे ऑटो सेक्टर के मज़दूरों की एकजुटता में तब्दील किया जा सके और एकता को व्यापक बनाया जा सके।

AICWU 2011-12 से ही हर आन्दोलन में शिरकत कर मुख्य रूप अस्थायी मज़दूरों समेत पूरे सेक्टर और इलाक़े के मज़दूरों को एकजुट करने में संघर्षरत रही है और अभी भी मारुति सुज़ुकी के अस्थायी मज़दूरों के संघर्ष में शामिल होकर सक्रिय समर्थन कर रही है। AICWU निम्न माँगपत्रक के आधार पर समूचे ऑटोमोबाइल उद्योग के मज़दूरों की एकजुटता स्थापित करने के लिए संघर्षरत है।

ऑटोमोबाइल सेक्टर के सभी अस्थायी व स्थायी मज़दूरों का माँगपत्रक:

• मारुति सुज़ुकी, बेलसोनिका, हीरो, मुंजाल शोवा समेत तमाम कम्पनियों के बर्ख़ास्त व निलम्बित मज़दूरों को तत्काल काम पर वापस लो!

• ठेका प्रथा ख़त्म करो! अप्रेण्टिस (TW 1+2), ट्रेनी (TW+CW+MST+SST+CT) मज़दूरों का शोषण नहीं सहेंगे! स्थायी प्रकृति के काम करने वाले इन सभी अस्थायी मज़दूरों को स्थायी करो!

• 'स्थायी काम पर स्थायी रोज़गार' और 'समान काम पर समान वेतन' लागू करो!

• ग़ैर-क़ानूनी निलम्बन, निष्कासन, तबादला, तालाबन्दी के नाम पर छँटनी बन्द करो!

• वेतन कटौती पर रोक लगाओ! स्थायी मज़दूरों की तरह और महँगाई के हिसाब से सभी अस्थायी मज़दूरों के लिए वेतन बढ़ोत्तरी लागू करो!!

• यूनियन बनाने के अधिकार व हड़ताल करने के अधिकार पर हमला बन्द करो!

• कार्यस्थलों पर सभी मज़दूरों के लिए सुरक्षा व सुविधाओं के पुख़्ता इन्तज़ाम करो!

• श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू करो! मज़दूर विरोधी 4 नये लेबर कोड तत्काल रद्द करो!

• न्यूनतम वेतन ₹30,000 प्रति माह लागू करो!

• 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी क़ानून' पारित करो! सबको रोज़गार न दे पाने की सूरत में ₹15,000 मासिक बेरोज़गारी भत्ता दो!

• सभी अस्थायी मज़दूरों के लिए भी साल में सवेतन 42 छुट्टियों (SL+CL+PL) के साथ-साथ बोनस के प्रावधानों को लागू करो!

कौन हैं हमारे देश के 'मुफ़्तखोर'?

● सनी

दिल्ली के चुनाव में रईसों और उच्चमध्यवर्गीय कॉलोनियों में यह जुमले काफ़ी ज़ोर-शोर से सुनने में आये कि राजधानी दिल्ली और हमारा देश ग़रीबों को मिलने वाल राशन और सरकारी सुविधाओं के कारण "ग़रीब" हो रहा है। रुपये की गिरावट का ठीकरा भी ग़रीब जनता को मिलने वाली सुविधाओं पर फोड़ा गया। गोदी मीडिया पर पैनलिस्ट आकर छाती पीट रहे थे कि अमीरों और मध्य वर्ग का टैक्स 'मुफ़्त सुविधाओं' पर खर्च हो रहा है और यह देश के विकास में बाधा है। कई लोग यह तर्क भी दे रहे थे कि इस टैक्स को देश के "विकास" पर खर्च होना चाहिए जबकि यह मज़दूरों, झुग्गीवालों, रिक्शा चलाने वालों, रेहडी-खोमचा लगाने वालों पर या कहें कि आम तौर पर ग़रीब आबादी पर बिजली मुफ़्त देने, इलाज मुफ़्त देने, स्कूली शिक्षा मुफ़्त देने, यातायात आदि पर "बर्बाद" किया जा रहा है।

इस तस्वीर का दूसरा पहलू यह था कि जब निर्मला सीतारमन ने चुनाव से ऐन पहले बजट में 12 लाख तक आय वर्ग के लोगों पर लगने वाले आयकर से पूरी छूट और उससे ऊपर कमाई वालों को भी कुछ छूट की घोषणा की तो "देश-निर्माण" में अपने टैक्स की "क़ुर्बानी" पर अपनी छाती पीटने वाले अमीर और उच्च-मध्यवर्ग के लोग सरकार के क़सीदे पढ़ने लगे। आठवीं पेंशन स्कीम की घोषणा और आयकर की नीतियों में बदलाव के ज़रिये भाजपा ने दिल्ली की बड़ी मध्यवर्ग आबादी का वोट पक्का कर चुनाव जीतने में क़ामयाबी पायी है, हालाँकि आयकर में किये गये बदलावों का फ़ायदा जनता के केवल 2 प्रतिशत हिस्से को मिलेगा। टैक्स छूट मिलने पर ग़रीबों के लिए भाजपा द्वारा की जा रही जुमलों की बारिश और साम्प्रदायिकता का ज़हर भी अब दिल्ली के रईसों को अमृतवाणी प्रतीत हो रहा है। इस बार आयकर की छूट के कारण क़रीब 1 लाख रुपये सरकारी ख़ज़ाने में जाने की जगह मध्यवर्ग का खाता पीता हिस्सा सरकारी ख़ज़ाने में जमा करने की जगह अपनी जेब में रख पायेगा। भाजपा के प्रचार के प्रभाव को आत्मसात करते हुए मज़दूर-मेहनतकश का एक छोटा-सा हिस्सा भी प्रचार में बहकर बता रहा था कि "मुफ़्त" सुविधाओं से देश का बण्टाधार हो गया है और महँगाई बढ़ रही है। गोदी मीडिया, भाजपा का व्हाट्सएप्प तन्त्र और नव उदारवादी अर्थशास्त्रियों ने इस झूठ स्थापित किया है कि इस देश का ग़रीब मुफ़्तखोर है! यह तथ्य टीवी चैनल, अखबार और सोशल मीडिया पर बार-बार दोहराया जाता है कि सरकार अमीरों पर लगाये करों और मध्य वर्ग के प्रत्यक्ष आयकर से चल रही है! हम इस झूठ की जाँच-पड़ताल आगे करेंगे लेकिन एक बात यहाँ साफ़ है कि भाजपा ने दिल्ली में सरकार बनाने से पहले ही जिनकी माँगों को चुनाव से पहले ही पूरा कर दिया वह उच्च मध्य वर्ग और अमीर वर्ग हैं।

भाजपा सरकार बनाने के बाद भी मज़दूर ठेका प्रथा पर खटते रहेंगे, बेरोज़गार सड़कों पर चप्पल फटकारते हुए घूमेंगे, ग़रीब सरकारी अस्पतालों की लम्बी लाइनों में दम तोड़ते रहेंगे और झुग्गियाँ हर मौसम में तोड़ी जाती रहेंगी। लेकिन इस ग़रीब आबादी को गोदी मीडिया और नवउदारवादी कलमघसीट मुफ़्तखोर बतायेगी। इस प्रश्न का जवाब देना ही होगा कि इस देश में मुफ़्तखोर कौन है? इस "मुफ्तखोरी" के शोर के पीछे की असलियत क्या है? मुफ़्तखोर हैं इस देश के पूँजीपति घराने, धन्नासेठ, व्यापारी, कुलक, नेता मन्त्री और ऊँची तनख्वाह पाने वाले उच्च मध्य वर्ग के लोग जो इस देश की मेहनतकश जनता की मेहनत की कमाई को लूटते हैं और सरकार द्वारा जनता से वसूले जाने वाले करों का बड़ा हिस्सा डकारने के बाद भी इस देश की ग़रीब जनता को ही मुफ्तखोर कहते हैं! कैसे? आइये तथ्यों पर गौर फरमाएँ! सबसे पहले इस पर ही नज़र डालें कि सरकार की आमदनी कहाँ से आती है?

बजट की घोषणा में वित्त मन्त्री

निर्मला सितारमन द्वारा आयकर के छह स्लैब्स स्थापित किये गए हैं। हालाँकि छूट के ज़रिये अब रु.12 लाख प्रति वर्ष की आय तक कोई कर नहीं लगेगा, रु.12 से 15 लाख प्रति वर्ष वाले को 15 प्रतिशत और रु.16-20 लाख प्रति वर्ष से अधिक वालों को 20 प्रतिशत आयकर देना होगा, रु.20-24 लाख प्रति वर्ष से अधिक वालों को 25 प्रतिशत आयकर देना होगा और 24 लाख से अधिक आय वालों को 30 प्रतिशत आयकर देना होगा। आयकर की छूट का भाजपा का यह तोहफ़ा मुख्यतः उच्च वर्ग और उच्च-मध्य वर्ग की झोली में आकर गिरा है। यह बात भी गौर करने लायक है कि प्रत्यक्ष करों की इस छूट से सरकारी ख़ज़ाने को 1 लाख करोड़ रु. का नुकसान होगा। इसकी भरपाई कहाँ से होगी? अप्रत्यक्ष करों में जारी बढ़ोतरी से ही! मोदी सरकार ने कॉरपोरेट टैक्स में कटौती से सरकारी ख़ज़ाने को होने वाले नुकसान की भरपाई करने के लिए जीएसटी लगाया और पेट्रोल-डीजल पर एक्साइज ड्यूटी बढ़ाकर अप्रत्यक्ष करों में बेइन्तहा बढ़ोतरी की है। पेट्रोल की क़ीमत में सरकार 54 प्रतिशत कर लेती है और डीजल की क़ीमत पर 49 प्रतिशत कर लेती है। इसके चलते ही कुल टैक्स में अप्रत्यक्ष करों की बढ़ोतरी हुई है और कॉरपोरेट टैक्स और प्रत्यक्ष आय कर का प्रतिशत घटता गया है। भारत में मुख्यत: आम मेहनतकश जनता द्वारा दिया जाने वाला अप्रत्यक्ष कर, जिसमें जीएसटी, वैट, सरकारी एक्साइज़ शुल्क, आदि शामिल हैं, सरकारी खज़ाने का क़रीब 60 प्रतिशत बैठता है। यह टैक्स इस देश की ग़रीब जनता ही देती है। यह इस देश के सरकारी ख़ज़ाने का सबसे बड़ा स्रोत है।

सरकार की आमदनी जिसे पब्लिक रेवेन्यू या सार्वजनिक राजस्व कहते हैं उसके तीन स्रोत होते हैं प्रत्यक्ष कर, अप्रत्यक्ष कर और अन्य स्रोत। यह अन्य स्रोत सरकारी उद्यमों से आने वाला मुनाफ़ा, ऋण पर ब्याज़, विनियामक शुल्क आदि होते हैं। असल में भारतीय सरकार की आमदनी के मुख्य स्रोत पहले दो स्रोत ही हैं यानी प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष कर। इसमें भी आज मुख्य स्रोत अप्रत्यक्ष कर बन चुके हैं। यह वह टैक्स है जो सभी वस्तुओं व सेवाओं को ख़रीदने पर आम जनता देती है यानी माचिस से लेकर कपडे धोने की साबुन जैसी वस्तु जिनके ऊपर ही लिखा रहता है 'सभी करों समेत'। न केवल वस्तु बल्कि सेवा भी इस कर दे दायरे में आती है। इस अप्रत्यक्ष कर का सबसे बड़ा हिस्सा कौन देता है? इस देश की आम ग़रीब मेहनतकश जनता! *आय के अनुसार देश की नीचे की 50 प्रतिशत आबादी कुल अप्रत्यक्ष करों का छह गुने से अधिक का भुगतान करती है। दूसरी बात यह कि करों के रूप में दिए जाने वाला हिस्सा एक मज़दूर की कमाई का बड़ा हिस्सा होता है जबकि अमीरों के ऊपर लगने वाले कर उनकी कमाई का बेहद मामूली हिस्सा होते* हैं। कर की व्यवस्था की एकमात्र तार्किक प्रणाली प्रगतिशील कराधान की प्रणाली हो सकती है जिसमें लोगों की आय के अनुसार ही कर बढ़ाये जाएँ लेकिन हमारे देश में ग़रीब जनता अपनी गाढ़ी कमाई के बड़े हिस्से से अमीरों की व्यवस्था को चलाने वाले सरकारी ख़ज़ाने को भरने का काम करती है और यह वह सच है जिसे गोदी मीडिया, नवउदारवादी कलमघसीट और सड़कों पर चलते फिरते भाजपा-संघ के भोंपू छिपाना चाहते हैं।

इस सच का दूसरा पहलू यह है कि सरकार बड़े मालिकों, धन्नासेठों, कम्पनियों आदि से जो प्रत्यक्ष कर लेती है उसमें लगातार कटौती कर रही है। 1990 के दशक तक यह कर आमदनी का 50 प्रतिशत तक हुआ करता था जिसे घटाकर 22 प्रतिशत तक कर दिया गया है। इसके कारण जो सरकारी ख़ज़ाने का भार भी अप्रत्यक्ष करों पर डाल दिया गया है। इस नीति के चलते कुल **1.84** लाख करोड़ रुपये का नुकसान हुआ और इस वजह से **2019-20** में सरकार को कर राजस्व में संशोधन करने की ज़रूरत पड़ी। राजस्व बढ़ाने के लिए, केन्द्र सरकार द्वारा माल और सेवा कर (जीएसटी) में बढ़ोतरी की गयी और डीजल और पेट्रोल पर उत्पाद शुल्क बढ़ाया गया। इस साल के बजट में भी उच्च वर्गों और उच्च मध्य वर्ग के ही करों में कटौती की गयी है। इसका बोझ भी मज़दूरों और आम मेहनतकश जनता के कन्धों पर ही आयेगा। तो कौन है जिसके दम पर यह सरकार और देश चल रहा है? केवल सरकारी ख़ज़ाने की ही बात करें तो साफ़ है कि इस सरकारी ख़ज़ाने का बहुलाँश ग़रीब जनता ही भरती है। इसलिए ही अनाज, शिक्षा, चिकित्सा, आवास, बिजली, पानी से लेकर हर सरकारी सुविधा का असल हक़दार इस देश की ग़रीब जनता है। उच्च वर्गों को भी इस देश की जो भी सुविधाएँ मिल रही हैं वह भी ग़रीब जनता के द्वारा दिए जा रहे करों के ज़रिये ही मिलती है।

फिर मुफ़्तखोरी कौन कर रहा है? बड़ी-बड़ी कम्पनियों को न सिर्फ़ टैक्स से छूट मिलती है बल्कि फ्री बिजली मिलती है, फ्री पानी मिलता है, कौड़ियों के दाम ज़मीन दी जाती है। इन कम्पनियों को घाटा होने पर बचाया जाता है। इन बड़ी कम्पनियों को बेहद कम ब्याज पर ऋण दिया जाता है जिसे न चुकाने पर एनपीए बोलकर माफ़ कर दिया जाता है! ये ही हैं जो इस देश के असली मुफ़्तखोर हैं जो इस देश के संसाधनों से लेकर मेहनत की खुली लूट मचा रहे हैं। इनके लिए ही सरकार श्रम क़ानूनों को लचीला बना रही है और मज़दूरों को फैक्ट्रियों में 18-18 घण्टे लूटने की योजना बना रही है। अमीरों को दी जाने वाली इन सौगातों से सरकारी ख़ज़ाने को जो नुकसान होता है, उसकी भरपाई आपके और हमारे ऊपर टैक्सों का बोझ लाद कर मोदी सरकार कर रही है। आम मेहनतकश जनता की माँग बनती है कि सरकार अप्रत्यक्ष कर प्रणाली को पूरी तरह से समाप्त करे और बड़े-बड़े पूँजीपतियों और धन्नासेठों पर अतिरिक्त कर लगाकर जनता की बुनियादी ज़रूरतें पूरी करे।

सरकारी ख़ज़ाने का एक हिस्सा जो अमीरों के प्रत्यक्ष करों के ज़रिये आता है वह भी उनकी तिजोरी में मज़दूरों की मेहनत के ज़रिये ही आता है। इन धनकुबेरों के पास जो जमा पूँजी है वह मज़दूरों की मेहनत का ही नतीजा है। धन और कुछ नहीं बल्कि मूल्य को ही प्रतिबिम्बित करता है। मूल्य का एकमात्र स्रोत मेहनत है और पूँजीपति उत्पादन के साधनों के निजी मालिकाने के दम पर मज़दूर को उज़रत के रूप में केवल उसकी श्रम शक्ति के मूल्य का भुगतान कर उत्पादन की प्रक्रिया में 'अतिरिक्त मूल्य' को हड़प लेता है। यही पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े का स्रोत है, यही वह कारण है जिससे अमीरी और ग़रीबी पैदा होती है। यानी सरकारी ख़ज़ाने के छोटे हिस्से के रूप में प्रत्यक्ष करों का भुगतान अमीर या अमीरों के टुकड़खोर करते हैं वह भी मज़दूरों ने पैदा किया है। इस बात से क्या निष्कर्ष निकलता है? बात केवल सरकारी ख़ज़ाने की नहीं है बल्कि इस दुनिया में सम्पदा मेहनतकशों के श्रम और प्रकृति से बनी है और उनका ही इसपर साझा हक़ होना चाहिए। इस दुनिया में *मुफ़्तखोर* केवल और केवल अमीर वर्ग हैं जो जोकों की तरह मज़दूरों-मेहनतकशों के शरीर से चिपके हुए हैं जो उनके जीवन-रक्त को चूस चूस कर मुटा रहे हैं। अमीर और अमीरों के टुकड़खोर और उनके शोषण को चलने वाली व्यवस्था को कचरा पेटी में फेंकना ही मज़दूरों-मेहनतकशों का नारा है। मज़दूरों-मेहनतकशों की मुक्ति के पथ का दीर्घकालिक लक्ष्य एक समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करना है जो इस शोषणकारी व्यवस्था को ध्वस्त करने के बाद स्थापित होगी और जिसमें कोई मुफ़्तखोर नहीं होगा।

बरगदवा (गोरखपुर) के मज़दूरों को अतीत के संघर्षों के सकारात्मक व नकारात्मक पहलुओं से सीखते हुए नये संघर्षों की नींव रखनी होगी

● प्रसेन

गोरखपुर के बरगदवा में स्थित 'ऋषिक स्पिनिंग प्राइवेट लिमिटेड' (जिसका पहले नाम वी.एन. डायर्स था) के मालिक ने मज़दूरों की मेहनत की लूट मचाने में सारे नियमों को ताक़ पर रख दिया है। बरगदवा के ज़्यादातर कारख़ानों में मज़दूरों की स्थिति लगभग एक जैसी ही है। लेकिन इस कारख़ाने के मालिक ने मज़दूरों के मेहनत की लूट की चक्की को सभी सरकारी छुट्टियों के दिन भी चलाना शुरू कर दिया है। ग़ौरतलब है कि इससे पहले मकर संक्रान्ति, 26 जनवरी के दिन मज़दूरों को छुट्टी मिलती थी। लेकिन अब ऐसी सारी छुट्टियाँ ख़त्म कर दी गई हैं। 26 जनवरी के दिन जब मालिक और नेता अलग-अलग जगहों पर गणतन्त्र दिवस का क़सीदा पढ़ रहे थे तो इस कारख़ाने के मज़दूर मालिकों के मुनाफ़े के लिए मशीनों में पेरे जा रहे थे।

इस धागा कारख़ाने में लगभग 350 मज़दूर काम करते हैं। इधर कारख़ाने के मालिक ने पुराने मज़दूरों को निकाल कर नए मज़दूर और क़रीब 120 स्त्री मज़दूरों को काम पर लगाया है। कारख़ाने में 3 तरह के मज़दूर हैं - ट्रेनी मज़दूर, सीनियर ट्रेनी मज़दूर और कारीगर। ज़्यादातर ट्रेनी और सीनियर ट्रेनी मज़दूर हैं। ट्रेनी मज़दूरों को 325 रुपये, सीनियर ट्रेनी मज़दूरों को 335 रुपये और कारीगरों को 453 रुपये दैनिक मज़दूरी मिलती है। असल में मज़दूरों को ट्रेनिंग के नाम पर लम्बे समय तक कम मज़दूरी पर काम करवाया जाता है। मज़दूरों ने बताया काम सीखने में मुश्किल से तीन महीने लगते हैं, लेकिन मालिक ट्रेनिंग के नाम पर 1 से डेढ़ साल तक काम करवाता है। उसके बाद कारीगर का दर्ज़ा दिया जाता है, अगर तब तक मज़दूर टिका रहा या मालिक द्वारा निकाल न दिया गया। यहाँ कोई भी मज़दूर परमानेण्ट नहीं है। किसी मजबूरीवश एक या दो दिन की अनुपस्थिति होने पर मज़दूरों के लिए गेट बन्द कर दिया जाता है। ओवरटाइम का डबल रेट से भुगतान नहीं होता। बस 4 घण्टे ओवरटाइम करने वाले को खुराकी के लिए 37 रुपये और 8 घण्टे ओवरटाइम करने वाले को खुराकी के लिए 75 रुपये मिलता है। मज़दूरों ने बताया कि कैशियर सन्तोष गुप्ता द्वारा अक्सर हाजिरी में गड़बड़ी कर दी जाती है। मज़दूर उसे ठीक करवाने के लिए कई दिन चक्कर लगाते हैं और कई बार

फ़ाइल फ़ोटो : दिल्ली में मज़दूर माँगपत्रक आन्दोलन में शामिल गोरखपुर के मज़दूर

उतना पैसा नहीं मिलता है। स्त्री मज़दूरों के साथ यह घटनाएँ अधिक होती हैं। 120 स्त्री मज़दूरों के लिए मात्र एक टूटा—फूटा टॉयलेट है। मास्क आदि की दूर-दूर तक कोई व्यवस्था नहीं है।

इस पूरे इलाक़े में बिगुल मज़दूर दस्ता के नेतृत्व में एक जुझारू लड़ाई लड़ी गई थी। काफ़ी संघर्षों के बाद मालिकों को मज़दूरों की एकजुटता के कारण उनके क़ानूनी अधिकारों की माँग माननी पड़ी थी। लेकिन मज़दूरों की राजनीतिक चेतना जिस हिसाब से विकसित होनी चाहिए थी वह नहीं की जा सकी। नेतृत्व ने आगे चलकर इस कमी का समाहार किया और इस दिशा में काम किया जा रहा है। उस समय मज़दूर क़ानूनी अधिकारों को पाकर तसल्ली से बैठ गए। जबकि मालिकों ने लगातार उन हक़ों को दुबारा छीनने के लिए तरह-तरह की तिकड़म करते रहे। मज़दूर राजनीतिक चेतना की कमी के चलते न तो अपने दूरगामी हितों को देख सके न ही जो लड़कर हासिल किये थे वे उसे बचा पाये। आज स्थिति यह है कि मालिक पूरी तरह से मज़दूरों पर हावी हैं। इस स्थिति को तभी पलटा जा सकता है, जब नये सिरे से राजनीतिक प्रचार और संगठन के काम को खड़ा किया जाय। इस दिशा में मज़दूरों के अगुवा दस्ते ने एक शुरुआत की है, जिसके नतीजे, हम उम्मीद कर सकते हैं, आने वाले समय में दिखायी देंगे।

मज़दूरों में इन सबके प्रति काफ़ी असन्तोष है। लेकिन यहाँ पर एकजुट होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ने में कई समस्याएँ हैं। सबसे पहले मज़दूरों में एकजुटता का बहुत अभाव है। मालिक ने स्त्री-मज़दूरों को आम तौर पर सुबह और दोपहर की पाली में रखा है। पुरुष मज़दूर अगर कारख़ाना बन्द भी करना चाहें तो पहली दो पाली में कारख़ाना नहीं बन्द होता। क्योंकि एक तो मालिकों ने स्त्री मज़दूरों को बहुत डराकर रखा है। दूसरे, महिला मज़दूरों की यह सोच काम करती है कि चुपचाप काम कर लो नहीं तो यह भी नहीं मिलेगा। इस वजह से कारख़ाना बन्द नहीं हो पाता। पुरुष मज़दूर अपना गुस्सा स्त्री मज़दूरों पर निकालते हैं कि इन सबकी वजह से सब हो रहा है। जबकि मज़दूरों को यह समझना होगा कि स्त्री मज़दूरों को उनके हक़-अधिकार की बात समझानी पड़ेगी, उन्हें एकजुट करना होगा और मालिकों की चाल विफल करनी होगी। पुरुष मज़दूरों को समझना होगा कि पूँजीवाद स्त्रियों की सामाजिक असुरक्षा का इस्तेमाल उन्हें दबाकर रखने में करता है ताकि उनके श्रम को और भी बेरहमी से निचोड़ा जा सके। लेकिन अगर वे लड़ने के लिए खड़ी हो जाती हैं, तो उनका कोई दुश्मन मुकाबला भी नहीं कर पाता। इसलिए धैर्य से समूची मज़दूर आबादी को साथ लाने और उनकी राजनीतिक चेतना व संगठन को खड़ा करने का काम करके ही हम आगे बढ़ सकते हैं, आपस में एक-दूसरे पर गुस्सा या खीझ प्रकट करके नहीं।

एकजुटता और यूनियन के अभाव में मज़दूरों में काम छूटने का डर बना रहता है। वास्तव में, फ़ासीवादी मोदी सरकार के आने के बाद से खाने-पीने आदि चीज़ों के रेट जिस रफ़्तार से बढ़े हैं उसमें मज़दूरों को अपने परिवार सहित गुजारा करना बहुत मुश्किल हो गया है। इसलिए भी कई मज़दूर चाहते हुए भी जोखिम लेने से डरते हैं। लेकिन इस डर से मज़दूरों को मुक्त होकर मालिक की अँधेरगर्दी के ख़िलाफ़ एकजुट होना होगा। क्योंकि वैसे भी मज़दूरों पर छँटनी की तलवार लटकती ही रहती है।

तीसरे, मज़दूरों को यह बात समझनी होगी कि पूँजीपतियों ने फ़ासीवादी मोदी सरकार को सत्ता में यूँ ही नहीं बिठाया है। आज मालिकों के मुनाफ़े की औसत दर संकट का शिकार है। इसलिए मोदी सरकार न केवल सारे श्रम क़ानूनों को मालिकों में पक्ष में ख़त्म करती जा रही है, बल्कि चार लेबर कोड के ज़रिये मज़दूरों की मेहनत को और भी ज़्यादा निचोड़ने का रास्ता बना रही है। श्रम विभाग आदि का पहले भी तभी कोई मतलब था जब मज़दूर संगठित होकर आवाज़ उठाते थे। लेकिन अब श्रम विभाग को ही ख़त्म किया जा रहा है। मई दिवस के शहीदों की कुर्बानी से हासिल 8 घण्टे के क़ानूनी अधिकार को ख़त्म करके 12 घण्टे तक बढ़ाने की योजना मोदी सरकार द्वारा बनाई जा रही है। एलएनटी के चेयरमैन सुब्रह्मण्यम जैसे पूँजी के टुकड़खोर ने हाल में ही यह बयान दिया कि वह सप्ताह में 90 घण्टे यानी हर दिन 13 घण्टे और वह भी सातों दिन काम लेना चाहता है। मज़दूरों को यह बात यूँ ही नहीं लेनी चाहिए।

इसलिए मज़दूरों के अपने हक़-अधिकार को बचाने और उन्हें बढ़ाने का केवल एक रास्ता है - मज़दूरों की व्यापक जुझारू एकता, राजनीतिक चेतना और संगठन। बरगदवा के इलाक़े के मज़दूर इलाक़ाई और पेशा आधारित यूनियन का निर्माण किये बग़ैर मालिकों का मुक़ाबला नहीं कर सकते। मज़दूरों को यह समझना होगा कि संघर्षों से जो हासिल हो उस पर अपनी पकड़ मज़बूत रखते हुए, अन्य अधिकारों के लिए संघर्ष की निरन्तरता बनाये रखनी होगी। मज़दूरों को नियमित पाक्षिक या मासिक बैठक, मज़दूर अखबार का अध्ययन, देश-दुनिया में लड़ रहे मज़दूरों के संघर्षों और उनके तौर-तरीक़ों को जानना-सीखना होगा। मज़दूरों के शोषण पर टिकी व्यवस्था की सच्चाई जाननी होगी। वैचारिक तौर पर अपने को तैयार किये बग़ैर मज़दूर वर्ग अपने संगठन को न तो मज़बूत कर सकता है और न ही व्यापक बना सकता है और न ही मालिकों और उसकी सरकार के मज़दूर विरोधी नीतियों को पहले से समझकर अपनी अग्रिम तैयारी कर सकता है।

रोज़ी रोटी का
सवाल खड़ा करती है जनता
शासन कुछ देर सिर खुजलाता है
एकाएक साम्प्रदायिक फ़साद शुरू हो जाता है
हर हाथ के लिए काम माँगती है जनता
शासन कुछ देर विचार करता है
एकाएक साम्प्रदायिक फ़साद शुरू हो जाता है
अपने बुनियादी हक़ों का
हवाला देती है जनता
शासन कुछ झपकी लेता है
एकाएक साम्प्रदायिक फ़साद शुरू हो जाता है
साम्प्रदायिक फ़साद शुरू होते ही
हरक़त में आ जाती हैं बन्दूक़ें
स्थिति कभी गम्भीर
कभी नियन्त्रण में बतलायी जाती है
एक लम्बे अरसे के लिए
स्थगित हो जाती है जनता
और उसकी माँगें
इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में शासन
अपनी चरमराती कुर्सी को
ठोंकपीट कर पुन: ठीक
कर लेता है।

– नरेन्द्र जैन

नौसेना विद्रोह - देश के मेहनतकशों की ऐतिहासिक विरासत

● अजित

“हमारी हड़ताल हमारे राष्ट्र के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना रही है। पहली बार सेना के जवानों और आम आदमी का ख़ून सड़कों पर एक साथ, एक लक्ष्य के लिए बहा। हम फ़ौजी इसे कभी नहीं भूलेंगे। हम यह भी जानते हैं कि हमारे भाई-बहन भी इसे नहीं भूलेंगे। हमारी महान जनता ज़िन्दाबाद! जयहिन्द!’’

ये शब्द थे नौसेना विद्रोह के उन सिपाहियों के जिन्होंने अंग्रेज़ी हुक़ूमत के ख़िलाफ़ बग़ावत का बिगुल फूँका था। यह विद्रोह भारत के इतिहास की एक ऐसी घटना थी जिसने तत्कालीन अंग्रेज़ी सरकार समेत देशी नेताओं तक की नींद हराम कर दी थी।

इस ऐतिहासिक घटना के बीज उस समय पड़े जब जब द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नौसेना का विस्तार किया जा रहा था। देश के हर कोने से लोगों को नौसेना में शामिल किया गया। पूरे देश के ही समान नौसेना में भी भारतीय लोगों के साथ नस्ली भेदभाव तथा दुर्व्यवहार किया जाता था। समान काम के लिए अंग्रेज़ नौसैनिकों को अधिक वेतन मिलता था। अंग्रेज़ नौसैनिकों तथा भारतीय नौसैनिकों को मिलने वाली सुविधाओं में भी बहुत अन्तर था। ज़ाहिर है, इसे लेकर भारतीय नौसैनिकों के बीच गुस्सा और असन्तोष था। 18 फ़रवरी 1946 को बेहतर खाने की माँग को लेकर बम्बई के ‘तलवार’ नामक जहाज़ पर नौसैनिकों ने हड़ताल कर दी। यह हड़ताल बम्बई पर तैनात नौसेना के 22 जहाज़ों तक फैल गयी। विद्रोहियों ने एम. एस खान के नेतृत्व में 'नेवल सेण्ट्रल कमिटी' का गठन किया। जहाज़ों से यूनियन जैक (ब्रिटेन का झण्डा) उतार कर काँग्रेस, मुस्लिम लीग तथा कम्युनिस्ट पार्टी के झण्डे लगा दिये गये। 'रॉयल इण्डियन नेवी' का नाम बदलकर 'इण्डियन नेशनल नेवी' कर दिया गया।

आमूलगामी आन्दोलन और समझौते के बीच ऊहापोह में 20 फ़रवरी को कमाण्डर के आदेश का पालन करते हुए नौसैनिक बैरकों और कैसलों में वापस लौट गए। वहाँ सेना ने उन्हें घेर लिया तथा उनकी घेरेबन्दी कर दी। जब नौसैनिकों ने घेरेबन्दी तोड़ने की कोशिश की तो सेना के साथ उनकी लड़ाई छिड़ गयी। यह ख़बर अन्य जगहों पर भी पहुँची तथा वहाँ भी नौसैनिकों ने हड़ताल कर दी। 22 फ़रवरी तक यह विद्रोह देशभर के नौसेना केन्द्रों तथा समुद्र पर खड़े जहाज़ों तक फैल गया। बम्बई, कलकत्ता, कराची तथा अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह के क़रीब 20,000 नाविकों ने इसमें भागीदारी की। नाविकों के समर्थन में देश के मज़दूरों तथा छात्रों ने भी हड़ताल की। बम्बई में क़रीब 3 लाख मज़दूरों ने अपना काम बन्द कर दिया। बैरकों, जहाज़ों समेत देश के अलग-अलग शहरों की स्थिति नाज़ुक होती जा रही थी। इसे देखकर अलग से सेना की टुकड़ियों को तैनात किया गया। नौसैनिकों तथा जनता ने पुलिस से लोहा लिया। सड़कों पर बैरिकेड खड़े कर लड़ाइयाँ हुईं। अंग्रेज़ कमाण्डर गॉडफ्रे ने वायुयान से जहाज़ों को उड़ाने की धमकी दी तो नौसैनिकों ने जहाज़ों पर लगे तोपों को बम्बई शहर की तरफ़ मोड़कर होटल ताज़ तथा गेटवे ऑफ इण्डिया को उड़ाने की बात कही। अंग्रेज़ों ने नौसैनिकों की रसद को रोक दिया तो बम्बई शहर में समुद्र किनारे जनता रसद लेकर तैयार हो गयी थी। सरकारी आँकड़ों के अनुसार सेना के साथ हुई झड़पों में क़रीब 228 लोगों की जान गयी और क़रीब 1000 लोग घायल हुए। लेकिन वास्तविक संख्या इससे कहीं अधिक है। नौसेना विद्रोह के साथ देश की जनता का खड़ा हो जाना, उनके समर्थन में मज़दूरों द्वारा हड़तालें किया जाना, छात्रों-युवाओं द्वारा प्रदर्शन किया जाना, दिखला रहा था कि नौसेना विद्रोह ने एक ऐसी तात्कालिक घटना का काम किया था, जिसने औपनिवेशिक शोषण और उत्पीड़न के जुए तले कसमसा रही भारतीय जनता के सब्र के प्याले को छलका दिया था। इसी दौर में एक ओर हड़तालों की लहर जारी थी, तेलंगाना किसान विद्रोह की शुरुआत होने को थी, देश के अन्य हिस्सों में भी कई जनविद्रोह पनप रहे थे। 1946 से 1947 और फिर 1947 से 1950 का दौर एक ऐसा दौर था जिसमें भारत ऐसी दहलीज़ पर खड़ा था कि अगर भारतीय कम्युनिस्ट तैयार होते तो देश एक जनवादी क्रान्ति का साक्षी बन सकता था। इस पूरे दौर में नौसेना विद्रोह एक विशेष महत्व रखने वाला अध्याय था।

इस पूरे घटनाक्रम में हम देख सकते हैं कि नौसैनिकों के साथ देश की जनता कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ रही थी लेकिन इसी समय हमारे देश के नेतागणों का क्या रुख़ था, यह भी महत्वपूर्ण बात है। नौसैनिकों ने हर पार्टी का समर्थन के लिए आह्वान किया लेकिन सिर्फ़ कम्युनिस्ट पार्टी ने उन्हें समर्थन दिया। यह समर्थन सिर्फ़ ज़ुबानी नहीं था बल्कि बम्बई में उन्होंने इस विद्रोह के समर्थन में आम हड़ताल का आह्वान किया जिसमें 3 लाख मज़दूरों ने भागीदारी की। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने शुरुआत में इस विद्रोह में उतनी दिलचस्पी नहीं दिखायी लेकिन मामला जब गम्भीर रूप लेने लगा तो कांग्रेस ने हस्तक्षेप किया। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अरुणा आसफ़ अली तथा अच्युत पटवर्धन ने विद्रोहियों का समर्थन किया लेकिन गाँधी, नेहरू, पटेल सभी ने इसकी निन्दा की। सरदार पटेल ने जिन्ना की मदद से समझौता करवाया। समझौता इस आश्वासन पर किया गया था कि विद्रोहियों को कोई सज़ा नहीं होगी लेकिन जल्द ही यह आश्वासन भुला दिया गया था। 23 फ़रवरी को पूँजीपति वर्ग के नेताओं की मध्यस्थता के बाद यह विद्रोह वापस ले लिया गया था।

मुम्बई में नौसेनिकों को गिरफ़्तार करके ले जाती हुई पुलिस

इस दौरान भारतीय नेताओं के बयान भी काफ़ी कुछ बताते हैं। पटेल ने 1 मार्च 1946 को एक कांग्रेसी नेता को लिखा, ‘‘सेना में अनुशासन को छोड़ा नहीं जा सकता... स्वतन्त्र भारत में भी हमें सेना की आवश्यकता होगी। जवाहर लाल नेहरू भी इस बात के कायल थे कि ‘‘हिंसा के उच्श्रृंखल उद्रेक को रोकने की आवश्यकता है।’’ गाँधी जी ने भी ‘बुरा और अशोभनीय’ उदाहरण क़ायम करने के लिए नौसैनिकों की निन्दा की व उन्हें ‘‘शिक्षा’’ दी कि यदि नाविकों को कोई शिक़ायत है, तो वे चुपचाप नौकरी छोड़ सकते हैं। गाँधी जी ने यह भी कहा कि ‘‘हिंसात्मक कार्रवाईयों के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों का एक होना एक अपवित्र बात है...-’’ 30 मई, 1946 को अंग्रेज वायसराय वेवेल ने अपनी निजी टिप्पणी में लिखा था, ‘‘हमें हर क़ीमत पर हिन्दुओं और मुसलमानों से एकसाथ उलझने से बचना चाहिए।’’

राजनीतिक रूप से अनुभवहीन नौसैनिकों और उनके नेतृत्व को देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के बुर्जुआ नेतृत्व के प्रति भरोसा और उम्मीदें थीं। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति उनके बेहद अच्छी भावना और बहुत से नौसैनिकों की करीबी थी। लेकिन आन्दोलन पूर्ण रूप से एक सूझ-बूझ वाले क्रान्तिकारी नेतृत्व में नहीं था। भारत के पूँजीपति वर्ग का राजनीतिक नेतृत्व एक ओर अंग्रेज़ों से राजनीतिक आज़ादी चाहता था, लेकिन दूसरी ओर वह जनता के किसी भी रैडिकल, क्रान्तिकारी व जुझारू आन्दोलन से भयाक्रान्त रहता था, चाहे वह मज़दूरों का हो, सैनिकों का हो या फिर ग़रीब किसानों का। जब भी ऐसा कोई आन्दोलन शुरू होता था, तो उन्हें यह दुस्वप्न सताने लगता था कि अगर ऐसे आन्दोलनों को किनारे कर जनता की पहलकदमी को पूरी तरह पूँजीवादी वैधिकता और वैधानिकता यानी कानूनवाद की सीमा के भीतर और उनके वर्ग हितों की सीमा के भीतर न लाया गया तो आज़ादी के बाद भी वे पूँजीपति वर्ग के शासन के लिए ख़तरा बन सकते हैं। इसलिए जब तक जनता के जनान्दोलन पूँजीपति वर्ग की पार्टियों कांग्रेस व मुस्लिम लीग के हाथों में रहता था, तब तक वे राजनीतिक आज़ादी के लिए ज़्यादा मुखर स्वर में बोलते थे, लेकिन जब जनता के जनान्दोलन उनके नियन्त्रण से बाहर जाते थे, तो वे साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन से भी समझौतापरस्ती करते थे। नौसेना विद्रोह के समय भी इन पूँजीवादी नेताओं ने अपना यही चरित्र प्रदर्शित किया।

एक तरफ़ नौसैनिकों व जनता का वीरतापूर्ण संघर्ष और कुर्बानी वहीं दूसरी तरफ़ देश के नेताओं का असंवेदनशील तथा समझौतापरस्त रवैया हमें बहुत कुछ सिखाता है। आज़ादी के आन्दोलन के तत्कालीन समय में जब देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे अपने चरम पर थे, नौसैनिकों के इस विद्रोह ने जनता की एकजुटता की मिसाल पेश की थी। अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को इस विद्रोह ने नाकाम कर दिया और दिखा दिया कि देश के हिन्दू और मुस्लिम साथ मिलकर लड़े तो यह शासकों के लिए कितना गम्भीर ख़तरा हो सकता है। इसके साथ ही इस विद्रोह पर बुर्जुआ वर्ग की तमाम पार्टियों के रवैये ने उनके असल चरित्र को उघाड़ कर सामने रख दिया। आज़ाद भारत में भी काँग्रेस के नेतागण एक ऐसी सेना चाहते थे जो कभी अन्याय के विरुद्ध आवाज़ न उठाये और केवल मुँह पर ताले डालकर आज्ञा का पालन करती रहे। वह जानते थे कि आज़ादी के बाद भी भारत में मुट्ठी भर पूँजीपतियों के शासन को देश की मेहनतकश जनता के ऊपर थोपे रखने के लिए एक "आज्ञाकारी" सेना की आवश्यकता होगी। आज भी सेना में मेहनतकश घरों से जाने वाले जवानों की स्थिति जानवरों से भी बदतर है। सेना की व्यापक आबादी को जनता से काटकर रखने के लिए उन्हें किसी भी प्रकार से जनता से मिलने-जुलने नहीं दिया जाता। उन्हें किसी उत्पादक गतिविधि में न लगाकर, उत्पीड़क क़वायदों में लगाये रखा जाता है, ताकि उनके मन में एक आकारहीन सा गुस्सा और असन्तोष पनपता रहे। इसके अलावा, अधिकारियों के नौकर की तरह इस्तेमाल किया जाना, घटिया खाना दिया जाना, लगातार अपमानित किया जाना, बैरकों की जीवन-स्थिति को भयंकर बनाकर रखना सेना में आज भी शासक वर्गों द्वारा किया जाता है। “राष्ट्रवाद” और “देशभक्ति” का फटा ढोल पीटने के बावजूद सेना के भीतर मौजूद वर्ग विभाजन और आम जवानों की जीवन-स्थिति सच्चाई का बयान कर देती है।

नौसेना विद्रोह का संघर्ष हमें दिखाता है कि किस तरह वास्तविक संघर्ष संगठित होने पर अंग्रेज़ों के साथ-साथ देसी हुक्मरानों की भी नींद उड़ गयी थी। काँग्रेस के नेतृत्व में लड़ी गयी आज़ादी की लड़ाई में काँग्रेस ने कभी भी जनता की पहलक़दमी को निर्बंध होने नहीं दिया और उसको इसी व्यवस्था के भीतर सीमित करती रही तथा 'समझौता-दबाव-समझौता' की नीति के तहत राजनीतिक आज़ादी की लड़ाई को लड़ती रही। यदि जनता अपनी पहलक़दमी पर कोई आन्दोलन करती तो काँग्रेस उसके साथ वहीं रुख़ अपनाती थी जो उसने नौसेना विद्रोह के साथ अपनाया।

इन तमाम बातों की रोशनी में आज हमें नौसेना विद्रोह को याद करना होगा क्योंकि आज़ादी की लड़ाई के एक अति आवश्यक अध्याय को बहुत कम महत्व देते हुए लगभग भुला दिया गया है। इसी व्यवस्था की सेवा करने वाली आज का पूँजीवादी मीडिया तथा शिक्षा प्रणाली हमें जनता के वीरतापूर्ण संघर्षों से परिचित नहीं होने दे रही है। आज हमें न केवल जनता के असली संघर्षों के इतिहास से परिचित होना है बल्कि उससे ज़रूरी सबक लेते हुए आज भी अपने असली मुद्दों पर एकजुट होकर जुझारू संघर्ष खड़ा करना है। आज सत्ता में बैठी फ़ासीवादी सरकार जनता को जाति-धर्म में बाँट रही है। ऐसे में नौसेना विद्रोह के दौरान स्थापित एकता हमारे लिए प्रकाशस्तम्भ का काम कर सकती है।

कुम्भ में भगदड़ : भाजपा के फ़ासीवादी प्रोजेक्ट की भेंट चढ़ी जनता

(पेज 1 से आगे)

के सिर पर फोड़ने की कोशिश की जा रही है।

वास्तव में पूरे कुम्भ मेले को ही भाजपा सरकार ने अपने फ़ासीवादी प्रचार के कार्यक्रम में तब्दील कर दिया था। मेले में भीड़ दिखाने के लिए तमाम रास्तों को ब्लॉक कर दिया गया और कई-कई किलोमीटर पहले ही बैरिकेडिंग कर दी गयी। आये दिन फ़िल्मी सितारों से लेकर नेताओं-मन्त्रियों और अडानी जैसे धनपशुओं के आगमन पर रास्तों का डायवर्जन किया जा रहा है। इलाहाबाद शहर के लोगों तक को अपने रोज़मर्रा के कामों के लिए कई-कई किलोमीटर तक पैदल चलना और बिना वजह की बैरीकेडिंग में फँसना-जूझना पड़ रहा है। घण्टों जाम लगना हर दिन की बात बन चुकी है। इन तमाम क़वायदों के ज़रिये करोड़ों लोगों के कुम्भ में पहुँचने का शोर मचाया गया। प्रधानमन्त्री मोदी से लेकर मुख्यमन्त्री योगी और पूरा भाजपा और संघ परिवार लोगों को कुम्भ में आने के लिए आमन्त्रित कर रहा था ताकि लोगों की बड़ी संख्या को इकट्ठा किया जा सके और इस अवसर को अपनी फ़ासीवादी राजनीति की 'दिव्य और भव्य' छवि लोगों के दिमाग़ में पैठाने के लिए इस्तेमाल किया जा सके। लगातार अल्पसंख्यकों के विरुद्ध बयानबाज़ी और कुम्भ में उनके आने पर तरह-तरह की चेतावनी और धमकियाँ देकर साम्प्रदायिक उन्माद का माहौल बनाया जा रहा था। संघ के तमाम अनुषंगी संगठन कहीं हिन्दू राष्ट्र का नया संविधान बनाने तो कहीं किसी और तरीक़े से साम्प्रदायिक ज़हर उगलने में लगे थे ताकि यहाँ पहुँचने वाली आबादी के दिलो-दिमाग़ में ज़हर घोला जा सके।

दूसरी तरफ़ इस महाकुम्भ में 'वीआईपी श्रद्धालुओं' के लिए अलग इन्तज़ाम किये गये थे। यानी एक तरफ़ जहाँ जनता को जितनी आफ़त और मुसीबत पार करके संगम पहुँचना पड़ रहा था, वहीं दूसरी कथित वीआईपी श्रद्धालुओं और पैसे वालों के लिए पूरा प्रशासन पलक पाँवड़े बिछाकर खड़ा था। ऐसे वीआईपी श्रद्धालुओं के तमाम इण्टरव्यू भी इण्टरनेट पर घूम रहे हैं जहाँ वह किसी तरह की असुविधा न होने और योगीजी/मोदीजी द्वारा बहुत अच्छा इन्तज़ाम करने की बातें कर रहे हैं। इन धनपशुओं के लिए कुम्भ को सजाने और दुनिया की सबसे बड़ी टेण्ट सिटी 'महाकुम्भ नगर' बसाने के लिए इलाहाबाद से लेकर देश के कई राज्यों के 50,000 से ज़्यादा मज़दूरों से बेहद कम मज़दूरी पर दिन-रात काम कराया गया। सबसे ज़्यादा शोषण की शिकार महिलाएँ रहीं, जिन्हें बहुत कम मज़दूरी पर खटाया गया। कई जगहों पर नाबालिग़ बच्चे भी अपने माता-पिता के साथ काम कर रहे थे। इनमें से अधिकांश मज़दूर आसपास के झुग्गी बस्तियों के बाशिन्दे थे। लेकिन सरकार ने कुम्भ शुरू होते ही इन झुग्गी बस्तियों को ढकने के लिए लोहे की चद्दरों की लम्बी और ऊँची दीवार खड़ी कर दी। इन बस्तियों में पार्किंग और सड़क बनाने के नाम प्रशासन द्वारा ज़बरदस्ती कई घरों पर बुलडोजर चला दिया गया था। 'दिव्य कुम्भ भव्य कुम्भ' के उन्मादी प्रचार के बीच इन झुग्गियों में रहने वाले हज़ारों परिवार बिजली, पानी, शौचालय और जीवन की बुनियादी ज़रूरतों के भयंकर अभाव से जूझ रहे हैं और नारकीय जीवन जीने को मज़बूर हैं। पाखण्ड के ऐसे अश्लील और निर्लज्ज प्रदर्शन की शायद ही कोई मिसाल देखने को मिलेगी।

बर्बरता की बहुत-सी कहानियों का तो कोई सुराग ही नहीं है। 11 जनवरी को कुम्भ में पाइपलाइन बिछाने का काम कर रहे एक बीमार नाबालिग़ मज़दूर की लगातार काम लिए जाने और समय पर समुचित इलाज़ ना मिल पाने की वजह से मौत हो गयी।

लतीफपुर गाँव का रहने वाला गोरेलाल अपने बूढ़े माँ-बाप का इकलौता लड़का था। इस भीषण ठण्ड में बिना सुरक्षा उपकरणों और काम की बेहद कठिन परिस्थितियों के कारण वह ठण्ड की चपेट में आ गया था। ठण्ड लगने की वजह से बीमार इस मज़दूर का इलाज करवाने के बजाय कुम्भ में ठेकेदारों ने उससे दिन-रात काम करवाया जिसके कारण वह काम के दौरान ही बेहोश होकर गिर पड़ा और कुछ समय बाद उसकी मौत हो गयी। ठेकेदार के इस कुकर्म को छिपाने के लिए पुलिस ने शव को छिपा दिया और परिजनों को बिना सूचना दिये लाश को जला दिया।

इसी तरह इसके पहले कुम्भ की तैयारी के दौरान सरायइनायत के जगबन्धन गाँव में हाइटेंशन तार खींचने के दौरान टावर के गिरने से 7 मज़दूर बुरी तरह घायल हो गये थे। जिसमें सलीम नाम के एक मज़दूर का पैर भी कट गया था और अन्य 6 लोग (कासिम, अब्दुल, अनिरुद्ध, आमिर, पुतुल शेख़, छुट्टन) बुरी तरह घायल हो गये थे। लेकिन इन्हें न ढंग का इलाज़ मिला और न ही कोई मुआवज़ा। ऊपर लिखे नामों को पढ़कर साफ़ पता लगाया जा सकता है कि कुम्भ को सजाने और छोटे से लेकर बड़े इन्तज़ाम करने वाले हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों के मज़दूर ही हैं। लेकिन जनता के बीच आपसी नफ़रत पैदा करने और कुम्भ के आयोजन मजदूरों-मेहनतकशों के खून धब्बे छिपाने के लिए साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने की मुहिम चलायी जा रही है।

31 दिसम्बर को नासिर नामक आईडी से कुम्भ में बम धमाका करने की धमकी को टीवी मीडिया में "हिंदुओं के ख़िलाफ़ मुसलमानो के जिहाद" के रूप में पेश किया गया। बाद में पता चला किया यह आरएसएस से जुड़ा आयुष नाम का एक नौजवान था जो नासिर के नाम से आईडी बनाकर नफ़रत फैला रहा था।

इस ज़हर को फैलाने में मीडिया और भाजपा-संघ परिवार कितने योजनाबद्ध ढंग से काम कर रहा है, इसे समझने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग के निदेशक शिशिर द्वारा कुम्भ के प्रसारण हेतु जारी गाइडलाइंस को पढ़ा जा सकता है। यह गाइडलाइन नहीं बल्कि एक तरह का फ़रमान है कि मीडिया खबरों को किस तरह प्रोजेक्ट करें जिससे सरकार का प्रचार हो और चुनाव के लिए नफ़रत की फ़सल बोयी जा सके।

योगी सरकार द्वारा 70 स्टोरी की एक सूची भेजी गयी है जिसमें बताया गया है कि क्या कवर करना है? किनका साक्षात्कार लेना है? हेडलाइंस और थीम की स्टोरी क्या होगी? यानी कौन-कौन सी ख़बरें किस रूप में मीडिया चैनल द्वारा दिखायीं और अखबारों में छापी जायेंगी? आदि।

'जूना अखाड़ा: विश्वासघात से उभरना', 'नागा साधु: सनातन धर्म की आरक्षित सेना .... जिसने मुगलों को चौंका दिया' नामक थीम में मुगलों के ख़िलाफ़ युद्धों और झड़पों में उनकी भागीदारी के बारे में बताया गया है। इस थीम को इसलिए रखा गया है ताकि गोदी मीडिया इससे मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रती स्टोरी तैयार कर सके। पिछले कुछ दिनों से कुम्भ के बारे में झूठ की बुनियाद पर खड़ी जिस तरह की उन्मादी खबरें आ रहीं इससे इस बात को आसानी से समझा जा सकता है।

थीम 27 में कहा गया है कि कुम्भ में स्नान करने के कारण मानव को होने वाले स्वास्थ्य लाभ ने वैज्ञानिकों को चकित कर दिया। इस थीम के तहत महाकुम्भ को मीडिया में विज्ञान के ऊपर आध्यात्म की विजय के रूप में दिखाया जा रहा है और इसी सिलसिले में आईआईटी वाले बाबा का खूब प्रचार किया जा रहा है कि उन्होंने लाखों की सैलरी वाली नौकरी छोड़कर भौतिकता के बजाय अध्यात्म का रास्ता अपना लिया। लेकिन वहीं दूसरी तरफ़ भारत के आईआईटी संस्थानों से पास 38 फ़ीसदी छात्र बेरोज़गारी में धक्के खा रहे है और रोज़गार पाने वाले अधिकांश नौजवान बेहद कम वेतन में काम करने को मज़बूर हैं। कोटा जैसे शहरों में NEET और JEE की तैयारी करने वाले छात्रों की बड़े पैमाने पर आत्महत्याएँ हो रही हैं। इस पर गोदी मीडिया चुप्पी साध कर बैठी है।

थीम 22 रोज़गार के मुद्दों से ही जुड़ी है जिसकी हेडलाइन है – "रोज़गार भरमार : महाकुम्भ की महिमा अपरम्पार"। इसमें कहा गया है कि मीडिया चैनल्स इस बात को दिखाएँ कि कुम्भ के आयोजन से किस तरह लाखों लोगों को रोज़गार मिला और किस तरह भाजपा सरकार के कार्यकाल में भारी मात्रा में नौजवानों को रोज़गार दिये गये हैं। लेकिन जिन्हें 2-3 महीने के लिए कुम्भ में काम मिला भी है क्या वे दो तीन महीनों में कुम्भ ख़त्म होने के बाद भूसा खाकर जिन्दा रहेंगे? "महाकुम्भ नगर" को बसाने और मेले में जिन्हें काम मिला भी है उनका वेतन बेहद कम है, सफाई करने वाले कर्मचारी बताते हैं कि उनसे 12-14 घण्टे काम कराया जाता है जिसके लिये वेतन 8 से 10 हजार ही है यानी एक दिहाड़ी मजदूर से काफ़ी कम, और ऊपर से ठेकेदारों द्वारा उसमें से भी कुछ पैसे काट लिए जाते हैं। बिना कोई सुरक्षा उपकरण मुहैया कराये काम कराये जाने और ठण्ड से बचने के लिए कोई समुचित इन्तज़ाम न होने के कारण लगातार ये मज़दूर बीमार हो रहे हैं। नाबालिग़ गोरेलाल की मौत इसका एक उदाहरण भी है।

महाकुम्भ में आम जनता की स्थिति और पैसों का खेल

सरकार द्वारा जारी फ़रमान और अपने गोदी चरित्र के अनुसार गोदी मीडिया कुम्भ की प्रशंसा के पुल बाँध रही है लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त कुछ और ही है। मोदी-योगी की तस्वीरों के साथ जगह-जगह लगे बैनरों-पोस्टरों में सामाजिक समता और समरसता की बड़ी-बड़ी बातें लिखीं हैं लेकिन भारतीय समाज के वर्गीय ढाँचे के आधार पर कुम्भ में टेण्ट का भी वर्गीकरण किया गया है। ग़रीबों के लिए अलग, मध्यवर्गीय आबादी के लिए अलग और धन्नासेठों के लिए अलग। कल्पवास तथा लोगों के रुकने ठहरे के लिए बनाये गये टेण्ट्स के ज़रिये सरकार और कई निजी कम्पनियाँ मोटा मुनाफ़ा कमा रही हैं। इन लक्ज़री टेण्ट में एक रात रुकने के लिए 12000 से लेकर 100000 तक वसूले जा रहे हैं।

मीडिया में ज़ोर-शोर से प्रचार किया जा रहा है कि आम आबादी के लिए निःशुल्क टेण्ट्स की व्यवस्था है लेकिन उनके क्या हालात हैं, इसको मीडिया नहीं बताता। अधिकतर शौचालय भयंकर रूप से गन्दे हैं, किसी टेण्ट में पानी नहीं है तो कहीं बिजली नहीं पहुँच रही है। शौचालय की ख़राब स्थिति और बिजली न होने आदि कई मुद्दों को लेकर सेक्टर 7 और 8 में 15 जनवरी को लोगों ने प्रदर्शन भी किया था। उनकी शिकायत थी कि अमीरों और नेताओं के लिए उच्च कोटि के टेण्ट और आम आबादी के लिए खराब टेण्ट लगाये गये हैं। सरकार का यह रवैया बेहद भेदभाव वाला है।

ठण्ड से बचने के लिए सरकार की तरफ से कोई समुचित इन्तजाम न होने की वजह से हज़ारों लोग खुले में ज़मीन पर रात गुजारने को मज़बूर हैं जिसके कारण लोग बीमार भी पड़ रहे हैं। मीडिया द्वारा कुम्भ में बनाये गये अस्पतालों का ख़ूब बखान किया जा रहा है। लेकिन वहाँ दवा-इलाज़ को समुचित इन्तज़ाम नहीं है। लोगों की शिकायत है कि वहाँ भी भेदभाव किया जा रहा है। संघ व भाजपा से जुड़े व अधिकारियों-नेताओं के सम्पर्क के लोगों और धन्नासेठों के इलाज़ का इन्तज़ाम तत्काल कर दिया जा रहा है लेकिन ग़रीबों और वहाँ काम करने वाले मज़दूरों को इलाज पाने काफ़ी दिक्कत झेलनी पड़ रही है और लेट-लतीफ़ी का शिकार होना पड़ रहा है। बहुतों को इलाज़ भी नहीं मिला पा रहा है।

एक तो पहले ही भारत के अस्पतालों में चिकित्सकों की भारी कमी है दूसरा इलाहाबाद व आसपास के ज़िलों के अस्पतालों से चिकित्सकों की ड्यूटी कुम्भ में लगने की वजह से अन्य अस्पतालों में जाने वाले मरीज़ों को इलाज़ नहीं मिल पा रहा है क्योंकि वहाँ डॉक्टर्स की संख्या काफ़ी कम हो गयी है।

यह बात समझने वाली है कि इस महाकुम्भ में सरकार हज़ारों करोड़ का ख़र्च "हिन्दुओं को पाप से मुक्ति" दिलाने के लिए नहीं बल्कि वोट बैंक की राजनीति और धन्नासेठों-कारोबारियों-ठेकेदारों के मोटे मुनाफ़े के लिए कर रही है। इलाहाबाद और उत्तर प्रदेश ही नहीं, दिल्ली, हरियाणा, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब और राजस्थान से लेकर देश के अलग-अलग इलाकों में महाकुम्भ के इश्तेहार के बड़े-बड़े बैनर-पोस्टर लगाये गये हैं। इसमें मोदी और भाजपा के अन्य नेताओं की तस्वीरें लगी हैं। ये पोस्टर बैनर लोगों को कुम्भ आने के लिए आमन्त्रित कर रहे हैं।

दरअसल कुम्भ जैसे धार्मिक मेलों में भारी भीड़ इकट्ठा होने के पीछे लोगों की धार्मिक भावनाओं के अलावा मीडिया चैनल और संघ काडरों द्वारा महाकुम्भ में जाने को लेकर अपने आप को "सच्चा हिन्दू" साबित करने का प्रचार प्रसार भी है।

भारत में पुनर्जागरण प्रबोधन का कोई सुसंगत और व्यवस्थित कार्यभार पूरा न होने तथा भारत में पूँजीवाद का विकास क्रान्तिकारी रास्ते से न होने की वजह से भारत में समाज में पुरानी मूल्य-मान्यताएँ बनी हुई है। जनवाद और विज्ञान-तर्कणा की ज़मीन बेहद कमजोर होने तथा धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के बने होने का फ़ायदा यह फ़ासीवादी ताक़तें उठाती हैं।

ऐसे किसी भी धार्मिक आयोजन में सरकार की भूमिका केवल व्यवस्था और प्रबन्धन की हो सकती है, लेकिन फ़ासीवादी भाजपा सरकार यहाँ आयोजक बनी बैठी है और ऐसी अपनी फ़ासीवादी मुहिम को आगे बढ़ाने के लिए एक प्रोजेक्ट के तौर पर इस्तेमाल कर रही है। आज ज़रूरत है कि भाजपा और संघ परिवार के इस फ़ासीवादी प्रोजेक्ट की सच्चाई को लोगों तक पहुँचाया जाये और लोगों को उनकी ज़िन्दगी के असली सवालों पर लामबन्द किया जाये।

भारतीय संविधान के 75 साल

संविधान का हवाला देकर फ़ासीवाद से मुक़ाबले की ख़ामख्याली फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष के लिए घातक सिद्ध होगी!

● वारुणी

बीते 26 नवम्बर को संविधान के 75 साल पूरे हुए और इस अवसर पर माकपा, भाकपा और भाकपा माले ने 'संविधान बचाओ' का नारा देते हुए प्रतिक्रियावादी और फ़ासीवादी ताक़तों से संघर्ष करने की न सिर्फ़ बातें की बल्कि आम जन के बीच 'संविधान बचाओ' अभियान भी ज़ोरों शोरों से चलाया (मतलब कि जितना ज़ोर अब इन संशोधनवादियों में बाक़ी है!)। ये तमाम सामाजिक-जनवादी ताक़तें फ़ासीवादी भाजपा और संघ का मुक़ाबला अब संविधान से करेंगी! माकपा तो पहले ही लोकसभा चुनावों के अपने घोषणापत्र में लिख चुकी थी कि भाजपा आरएसएस असल में संविधान की "आत्मा" पर हमला कर रहे हैं! माकपा के अनुसार संविधान जिन धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी मूल्यों पर आधारित है, उसे भाजपा ख़त्म कर रही है। हालाँकि संविधान के इन "मूल्यों" की असलियत को ख़ुद देश के सुप्रीम कोर्ट ने बेलागलपेट बयान कर दिया था कि यह समाजवादी लुक़मा असल में और कुछ नहीं बल्कि कल्याणकारी व राजकीय पूँजीवाद की नीतियाँ हैं, इसे वास्तव में समाजवाद समझकर डरने की कोई आवश्यकता नहीं है! माकपा अब लोगों के जीवन की बदतर स्थितियों को ठीक करने के लिए उन्हीं कल्याणकारी नीतियों की ओर लौटने की वकालत करती है। उनके अनुसार, लोगों की ये बदतर होती स्थितियाँ बस क्रोनी कैपिटलिज़्म (मतलब पूँजीपतियों के साथ राज्य के भ्रष्ट लेन-देन वाला पूँजीवाद) और साम्प्रदायिक-कॉरपोरेट गठजोड़ का नतीज़ा है, और इससे निपटने के लिए वह महज़ कुछ चुनावी जोड़-तोड़ कर भाजपा को सत्ता से हटाने की वकालत करती हैं। भाकपा भारत में फ़ासीवाद की स्थापना को स्वीकार करने के बाद अपने को 'संविधान बचाओ' तक ही सीमित रखती है और संविधान प्रदत्त "धर्मनिरपेक्ष, कल्याणकारी" और संघीय ढाँचे की वकालत करती है। दूसरी तरफ़ भाकपा माले लिबरेशन द्वारा अपने 'लिब-लिब' चरित्र का प्रदर्शन सबसे बेशर्मी से किया गया। इसने बीते 26 नवम्बर से दो महीने लम्बे 'संविधान बचाओ' अभियान को पूरे देश भर में चलाया! अपने दो माह लम्बे 'संविधान बचाओ' अभियान के तहत भाकपा माले लिबरेशन ने कई स्थानों पर संविधान की प्रस्तावना के शिलापट्ट का उद्घाटन भी किया और बिहार में कई जिलों में तिरंगा रैलियाँ निकालीं! ये भी संविधान के "सिद्धान्तों और आदर्शों" को बचाने के लिए 'संविधान बचाओ-लोकतन्त्र बचाओ' का नारा देते फिरते हैं। इनके अनुसार संविधान बचाकर ही आज भाजपा- आरएसएस जैसी ताक़तों से लड़ा जा सकता है।

यदि ये तमाम पार्टियाँ किसी निरंकुश तानाशाह/फ़ासीवादी ताक़त द्वारा संविधान को ख़त्म करने की बात कर रही हैं, तो बताते चलें कि वास्तव में मोदी सरकार को अपनी जनविरोधी नीतियों को लागू करने के लिए कभी संविधान में कोई संशोधन करने की आवश्यकता नहीं पड़ी है। उलटे इस संविधान में वे सारे प्रावधान पहले से ही मौजूद थे, जो मोदी सरकार को उन तमाम जनविरोधी नीतियों को लागू करने का अधिकार देते हैं, जो उसने लागू की हैं! फ़ासीवादी ताक़तें आम तौर पर संविधान और नियम-क़ायदे का उल्लंघन किये बिना ही सत्ता में पहुँचती हैं। जर्मनी में हिटलर का सत्ता में आना या भारत में मोदी के सत्तासीन होना, इसकी मिसालें हैं। दूसरी बात आज के दौर के फ़ासीवाद को इस बात की ज़रूरत ही नहीं है कि वह संविधान या बुर्जुआ जनवादी संस्थाओं को रूप के धरातल पर यानी औपचारिक तौर पर ख़त्म कर दे। एकाधिकारी पूँजीवाद के युग के नवउदारवादी दौर में जिस प्रकार जनवादी मूल्यों का क्षरण हुआ है, और ख़ुद बुर्जुआ वर्ग की बची-खुची बुर्जुआ जनवादी अन्तर्वस्तु का विघटन हुआ है उसने यह सम्भव बना दिया है कि फ़ासीवादी ताक़तें अपने तमाम मंसूबों को बिना बुर्जुआ जनवाद के खोल का परित्याग किये अंजाम दे सकती हैं। बीसवीं सदी के फ़ासीवाद को भले ही बुर्जुआ राज्यसत्ता के बुर्जुआ जनवादी अस्तित्व-रूप, यानी संसद, विधानसभाओं, चुनावों आदि को रद्द करने की ज़रूरत पड़ी हो, लेकिन आज के नवउदारवादी दौर में फ़ासीवाद को आम तौर पर बुर्जुआ जनवाद के खोल को नष्ट करने की ज़रूरत नहीं। दूसरी बात यह कि फासीवादी ताकतें भी अपने अतीत से सबक लेते हुए भी बुर्जुआ जनवादी अस्तित्व-रूप को नष्ट करने की हिमायत नहीं करतीं। जिस रूप में जर्मनी और इटली में बुर्जुआ राज्यसत्ता के जनवादी अस्तित्व रूप को ख़त्म कर नंगी तानाशाही लागू करने की वजह से फ़ासीवादी ताक़तों का उस देश के राजनीतिक परिदृश्य से लम्बे समय के लिए पूरी तरह सफ़ाया हो गया था, आज फ़ासीवादी ताक़तें ऐसी स्थिति दुबारा से नहीं बनने देना चाहेंगी। और चूँकि नवउदारवादी दौर में निरंकुश राज्यसत्ता के उदय के साथ फ़ासीवादी ताक़तों को अपने मंसूबों को पूरा करने के लिए बुर्जुआ जनवादी खोल किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करता, इसलिए उसे इस खोल का परित्याग करने की ज़रूरत ही नहीं है। आज चाहे वह श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर देने की नीति हो, या उपासना स्थल क़ानून को तब्दील करने की बात हो, या फ़िर जन-विरोधी नागरिकता क़ानून को लागू करने की बात हो, या भारतीय दण्ड संहिता में तब्दीली की बात हो या फ़िर वह 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' करवाने की बात हो - यह सारे जन-विरोधी क़दम और जनवादी अधिकारों को ख़त्म करने के हथकण्डे बिल्कुल संवैधानिक तरीक़े से अपनाये जा रहे हैं!

असल में आज जिस प्रकार राज्यसत्ता के तमाम अंगों में मसलन नौकरशाही, पुलिस, सेना, न्यायपालिका में फ़ासीवादी ताक़तों ने घुसपैठ कर अपनी फ़ासीवादी पकड़ मज़बूत की है कि उन्हें अपने बहुदलीय संसदीय जनवादी प्रणाली, संविधान और संसद को ख़त्म करने की ज़रूरत नहीं! यही वजह है कि जहाँ एक तरफ संसदीय वामपन्थी और सामाजिक जनवादी संविधान का हवाला दे रहे हैं, वहीँ दूसरी तरफ़ भाजपा भी इसी लुक़मे का इस्तेमाल कर रही है। मोदी सरकार ने संविधान के 75 साल पूरे होने पर 'हमारा संविधान हमारा स्वाभिमान' अभियान शुरू किया है। भाजपा पार्टी दो सप्ताह से राष्ट्रव्यापी संविधान गौरव अभियान चलाते हुए संवैधानिक मूल्यों की "हिफ़ाज़त" में लगी है! इसमें भाजपा-संघ परिवार पूरी तरह से अम्बेडकर को अपने फ़ासीवादी प्रोपोगैण्डा में सहयोजित करने में लगा हुआ है। फ़ासीवादी प्रचार का यही चरित्र होता है कि वह अपने मूल में व्यवहारवादी (प्रैग्मैटिस्ट) होता है, यानी उसे जब जो जैसे इस्तेमाल करना होता है, वह उन प्रतीकों या व्यक्तित्वों का वैसे इस्तेमाल करता है। वह एक ख़ास तबके को काल्पनिक शत्रु के रूप में निर्मित करता है, जिसे वह हर समस्या की जड़ बताता है। भारत के परिप्रेक्ष्य में यह अल्पसंख्यक मुस्लमान आबादी है। अपने गढ़े गए इसी काल्पनिक शत्रु के बरक्स फ़ासीवादी ताक़तें एक शुद्ध रूप से विचारधारात्मक समुदाय का निर्माण करती हैं। "हिन्दू राष्ट्र" की स्थापना की बात करते हुए वे एक ऐसे समुदाय को गढ़ती हैं, जिसके सदस्यों में इसके अतिरिक्त कुछ भी साझा नहीं कि वे मुसलमान *नहीं* हैं। उन्हें अपने इस 'हिन्दू राष्ट्र' में दलितों और पिछड़ी जातियों को भी सहयोजित करना है, ठीक इसलिए ही वे अम्बेडकर का नाम इस्तेमाल कर रही हैं और संविधान के मूल्यों की रक्षा का हवाला देकर पिछड़ी जाति से आने वाले लोगों को अपने फ़ासीवादी प्रचार का निशाना बना रही है। और अम्बेडकर की व्यवहारवादी विचारधारा के कारण कहीं न कहीं उनके प्रतीक का यह सहयोजन सम्भव भी हो जाता है।

हम साफ़ देख सकते हैं कि भाजपा को संविधान का हवाला देने और उसकी दुहाई देने में कोई समस्या नहीं, उलटे फ़ायदा है। और संविधान में पहले से ही वे सारे प्रावधान मौजूद हैं जो भाजपा जैसी फ़ासीवादी ताक़तों को अपने मंसूबों को लागू करने के लिए चाहिए! जिस संविधान का हवाला देकर तमाम तथाकथित वामपन्थी पार्टियाँ जनवाद, धर्मनिरपेक्षता और समानता व समाजवादी मूल्यों को बचाने की बात कर रही हैं, असल में वह संविधान अपने आप में बेहद सीमित जनवाद को मुहैय्या कराता है। ख़ुद संविधान बनने की प्रक्रिया ही गैर-जनवादी रूप से पूरी हुई, जहाँ देश के मात्र 11.5 प्रतिशत अभिजातों द्वारा चुनी गयी संविधान सभा ने संविधान निर्माण का काम किया। यह संविधान सभा सार्विक मताधिकार के आधार पर चुनी ही नहीं गयी थी। जिस संविधान को कुछ लोग जनवाद की "पवित्र पुस्तक" बताने में लगे हैं, उसमें आदर्शों की तमाम लफ़्फ़ाज़ियाँ दुनिया के विभिन्न संविधानों से हूबहू उतार ली गयी हैं, लेकिन जहाँ तक मूल अन्तर्वस्तु का सवाल है, इसकी आधे से अधिक धाराएँ औपनिवेशिक भारत के 1935 के 'गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट' से ज्यों की त्यों उठायी गयी हैं। अभी हाल में "गुलामी की मानसिकता से मुक्ति" का हवाला देकर अमित शाह द्वारा भारतीय दण्ड संहिताओं में बदलाव करना भी कोई ग़ैर-संवैधानिक प्रक्रिया के ज़रिये नहीं हुआ। इन दण्ड संहिताओं में तब्दीली करके बेरोज़गारी, महँगाई और ग़रीबी से तंग जनता के बढ़ते जनाक्रोश के ख़तरे को देख फ़ासीवादी भाजपा द्वारा पहले ही उसे कानूनसम्मत तरीके से कुचल डालने के इन्तेज़ामात किये जा रहे हैं। और यह सब बुर्जुआ संवैधानिक फ्रेमवर्क के भीतर ही हो रहा है। साफ़ है कि भाजपा को अपने फ़ासीवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए न तो पूँजीवादी जनवाद के खोल को त्यागने की ज़रूरत है और न ही संविधान पर हमला करने की।

दूसरी ओर जिस संविधान को समाजवाद के मूल्य पर आधारित पवित्र ग्रन्थ बताया जाता है, उसकी सच्चाई तो खुद हाल में सुप्रीम कोर्ट ने बयां कर दी थी। यह समाजवाद और कुछ नहीं बल्कि कल्याणकारी पूँजीवादी राज्य का नमूना है। इस नेहरूकालीन राजकीय पूँजीवाद को समाजवाद कहना या तो एक मूर्खता है या संशोधनवादी पार्टियों की धूर्तता! भारतीय संविधान में उल्लिखित धर्मनिरपेक्षता भी अपने ऐतिहासिक अर्थों में धर्मनिरपेक्षता है ही नहीं। धर्मनिरपेक्षता का भारतीय संस्करण 'सर्व-धर्म-सद्भाव' बन गया है। और इसी 'सर्व धर्म सद्भाव' का नतीज़ा है कि पीछे 76 सालों में धर्म को राजनीति के साथ मिलाया जाता रहा है और धर्म का राजनीतिक इस्तेमाल हर पार्टियों ने किया है। धर्मनिरपेक्षता या सेक्युलरिज़्म का असल मतलब होता है राजनीति और सामाजिक जीवन से धर्म का पूर्णतः विलगाव। धर्म हर किसी का निजी मसला हो और राजनीति व सामाजिक जीवन से उसका कोई रिश्ता न हो। लेकिन भारत में ऐसा कभी नहीं रहा। राजनीति, शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में धर्म की दखलन्दाजी फासिस्टों के सत्तारूढ़ होने के पहले भी थी, राजनीति में धर्म का खुलेआम इस्तेमाल होता था और धार्मिक ध्रुवीकरण की आँच पर कांग्रेस सहित अन्य बुर्जुआ पार्टियाँ भी अपनी रोटियाँ सेंका करती थीं।

अच्छे से अच्छा बुर्जुआ जनवादी संविधान भी अपने मूल में बुर्जुआ वर्ग के शासन का ही आधार-ग्रन्थ होता है। संविधान में दिये गये जितने अधिकार है, उनके कार्यान्वयन की यदि बात करें तो आबादी में वर्गीय स्तर पर आप जितने नीचे जायेंगे, संविधान और जनवाद की बातें उतनी ही हवा-हवाई होती जाएँगी। कांग्रेस की सरकार ने भी इसी संविधान का इस्तेमाल कर मज़दूरों, मेहनतक़शों, दलितों, आदिवासियों, स्त्रियों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को कुचलने का बखूबी काम किया। चाहे वह मारुति के मज़दूरों का दमन हो या आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों पर थोपा गया एस्मा क़ानून हो, या क्रान्तिकारी जन आन्दोलनों को कुचलने के लिए दिया गया कोई क़ानूनी तर्क हो - यह सब इसी बात को दिखाता है कि अंततः यह संविधान बुर्जुआ वर्ग की ही सेवा में लगा होता है। जनता को यह बेहद सीमित अधिकार देता है। इसलिए क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के लिए 'संविधान बचाओ' का नारा कोई रणनीतिक क्षितिज या लक्ष्य नहीं है।

सच है कि तमाम कमियों के बावजूद भी यह संविधान हमें सीमित ही सही लेकिन जनवादी अधिकार देता है। हालाँकि ये अधिकार भी जनता के संघर्षों के कारण ही मिले हैं। और

(पेज 12 पर जारी)

संविधान का हवाला देकर फ़ासीवाद से मुक़ाबले की ख़ामख्याली फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष के लिए घातक सिद्ध होगी!

(पेज 11 से आगे)

इसी अतिसीमित, रहे-सहे जनवादी अधिकारों पर भी फ़ासीवादी भाजपा संघ परिवार डाका डाल रहे हैं और जनता को उनके जनवादी अधिकारों से वंचित कर रहे हैं, तो बेशक आज इन सीमित सही, पर जनवादी संवैधानिक अधिकारों की हिफ़ाज़त के लिए सड़कों पर उतर कर लड़ना होगा। क्योंकि जनवादी अधिकारों पर हो रहा हर हमला मज़दूर वर्ग पर भी हमला है। मज़दूर वर्ग को राजनीतिक रूप से संगठित होने के लिए भी सबसे मुफ़ीद स्थिति व्यापक जनवाद की स्थिति में ही होगी। इसलिए हमें अपने जनवादी और नागरिक अधिकारों की लड़ाई कतई नहीं छोड़नी चाहिए। और एक सुसंगत जनवाद के लिए हमेशा संघर्ष करना चाहिए। इस लड़ाई में संवैधानिक निदानों और प्रावधानों का बेशक भरपूर इस्तेमाल करना चाहिए, संवैधानिक वायदों-करारों से फ़ासिस्टों के विश्वासघात को भी उजागर करना चाहिए और संविधान-प्रदत्त अतिसीमित ही सही लेकिन उन जनवादी अधिकारों के भी अपहरण के ख़िलाफ़ संघर्षरत रहना चाहिए। लेकिन इस प्रक्रिया में संविधान को जनवाद की "पवित्र पुस्तक" कतई नहीं बनाया जा सकता है। न ही इस लड़ाई को महज़ जनवादी अधिकारों की लड़ाई तक सीमित कर देना चाहिए। क्योंकि असल में जनवादी अधिकारों पर हो रहे ये हमले एक फ़ासीवादी सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा किये जा रहे हमले हैं।

'संविधान बचाओ' के नारे से फ़ासीवाद से मुक़ाबले की ख़ामख्याली हमें कत्तई नहीं पालनी चाहिए। आज तमाम संशोधनवादी व संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ ठीक यही काम कर रही हैं! वे ऐसा क्यों कर रही हैं? क्योंकि वे इस मुगालते में हैं कि फ़ासीवाद को सत्ता के उखाड़ करके किसी प्रकार के शुद्ध-बुद्ध बुर्जुआ जनवाद को स्थापित किया जा सकता है। इसलिए ही माकपा, भाकपा सरीखी पार्टियाँ वापस उसी कल्याणकारी राज्य की और रुख करने की बात कर रही हैं, जिसका युग बीत चुका है और जो तब भी मेहनतकश अवाम को कुछ ख़ैरात के अलावा कुछ नहीं देता था। असल में सामाजिक जनवादी पार्टियों की यही समस्याएँ थी जिसने जर्मनी और इटली फ़ासीवाद की प्रतिरोध्य उभार को अप्रतिरोध्य उभार में तब्दील कर दिया था। एक तरफ़ यही पार्टियाँ अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद की राजनीति करते हुए मज़दूर वर्ग को एक राजतीतिक वर्ग के रूप मे संगठित होने से रोकती हैं। और दूसरी तरफ़ ये आम जनता को संविधान और बुर्जुआ जनवाद का हवाला देकर इसी व्यवस्था की चौहद्दी तक सीमित रखती हैं। असल में फ़ासीवाद के पैदा होने की ज़मीन ही यहीं से तैयार होती है, जब ये नकली लाल झण्डे वाली पार्टियाँ और वर्ग सहयोगवाद, मज़दूरवाद व अर्थवाद की वकालत करने वाले संगठनों की नीति मज़दूर वर्ग को राजनीतिक वर्ग के रूप में विकसित होने में बाधाएँ खड़ी करती हैं। हमें इन तमाम नकली लाल झण्डे वाली पार्टियों से सचेत हो जाना चाहिए। आज इनकी असलियत को समझने की ज़रूरत है और इनका जनता के बीच पर्दाफ़ाश करने की ज़रूरत है। असल में इन तमाम संसदीय वामपन्थी पार्टियों के लिए फ़ासीवाद से मुक़ाबला बस एक चुनावी जोड़-तोड़ की रणनीति तक सीमित रहता है। भाजपा से मुक़ाबले के नाम पर कभी ये कांग्रेस की गोद में जाकर बैठते हैं, तो कभी 'जय लालू-लाल सलाम' के घटिया नारे लगते हुए बेशर्मी से पूँजीवादी पार्टियों की पूँछ में कंघी करते फिरते हैं।

"संविधान बचाओ" का नारा अपने आप में इसी व्यवस्था की चौहद्दी के भीतर हमारे संघर्ष को समाप्त कर देने वाला नारा है। हमें समझना होगा कि फ़ासीवाद के विरुद्ध लड़ाई में जब हम किसी प्रकार के बुर्जुआ जनवाद की पुनर्स्थापना की बात करते हैं तो वह फ़ासीवाद के विरुद्ध चल रही लड़ाई में बेहद घातक और आत्मघाती सिद्ध हो सकता है। हमें यह समझना होगा कि फ़ासीवाद का विकल्प किसी किस्म का शुद्ध-बुद्ध बुर्जुआ जनवाद नहीं हो सकता। असल में फ़ासीवाद आज के दीर्घकालिक मन्दी के दौर में एक कमोबेश स्थायी परिघटना बन चुका है। पूँजीवादी संकट आज एक दीर्घकालिक मन्दी का रूप ले चुका है, जो नियमित अन्तरालों पर महामन्दी के रूप में भी फूटती रहती है। आज तेज़ी के दौर बेहद कम हैं, छोटे हैं और काफ़ी अन्तरालों पर आते हैं और अक्सर वास्तविक उत्पादक अर्थव्यवस्था में तेज़ी के बजाय सट्टेबाज़ वित्तीय पूँजी के बुलबुलों की नुमाइन्दगी करते हैं। ऐसे में, बुर्जुआ वर्ग का प्रतिक्रिया और निरंकुशता की ओर झुकाव, टुटपुँजिया वर्गों के बीच सतत् असुरक्षा और परिणामतः प्रतिक्रिया की ज़मीन लगातार मौजूद रहती है और वर्ग-संघर्ष के ख़ास नाज़ुक मौक़ों पर यह एक पूँजीपति वर्ग व पूँजीवादी राज्य के राजनीतिक संकट की ओर ले जाने की सम्भावना से परिपूर्ण स्थिति सिद्ध होती है। ऐसे में, फ़ासीवाद का उभार आपदा-समान, अचानक और तीव्र गति से होने वाली घटना का स्वरूप नहीं लेता, बल्कि उसे एक लम्बे ऊष्मायन काल यानी पकने के बेहद लम्बे दौर से पहचाना जाता है, जिसमें वह राज्यसत्ता का आन्तरिक 'टेकओवर' करता है और समाज की पोर-पोर में आणविक व्याप्ति को अंजाम देता है, बुर्जुआ जनवाद के राज्य-रूप का परित्याग नहीं करता, लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु को लगातार नष्ट करता रहता है। विशिष्ट स्थितियों में फ़ासीवादी शक्तियाँ सरकारी सत्ता से बाहर भी जा सकती हैं। लेकिन इसका अर्थ उसका पूर्ण विध्वंस नहीं होता। बल्कि समाज और राज्यसत्ता में अपनी सुदृढ़ स्थितियों को फ़ासीवाद बनाये रखता है और दीर्घकालिक संकट की आम स्थितियों में वह फिर से सरकारी सत्ता में भी लौटता है। चूँकि इक्कीसवीं सदी का फ़ासीवाद इस रूप में अब एक निरन्तर ज़ारी परियोजना बन चुका है, इसलिए आज फ़ासीवाद का निर्णायक ध्वंस समाजवादी क्रान्ति के साथ ही सम्भव है। फ़ासीवाद के बदले कोई बुर्जुआ जनवाद या कल्याणकारी राज्य को स्थापित करने की सोच से ज़्यादा घातक पूरे फ़ासीवाद विरोधी रणनीति के लिए और कुछ भी नहीं।

'कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किसकी सेवा करता है'

पुस्तक से एक अंश

राज्यसत्ता का असली स्वरूप तब सामने आता है जब जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती है और कोई आन्दोलन संगठित होता है। ऐसे में विकास प्रशासन और कल्याणकारी प्रशासन का लबादा खूँटी पर टाँग दिया जाता है और दमन का चाबुक हाथ में लेकर राज्यसत्ता अपने असली खूनी पंजे और दाँत यानी पुलिस, अर्द्ध-सुरक्षा बल और फ़ौज सहित जनता पर टूट पड़ती है। पुलिस से तो वैसे भी जनता का सामना रोज़-मर्रे की जिन्दगी में होता रहता है। पुलिस रक्षक कम और भक्षक ज़्यादा नज़र आती है। आज़ादी के छह दशक बीतने के बाद भी आलम यह है कि ग़रीबों और अनपढ़ों की तो बात दूर, पढ़े लिखे और जागरूक लोग भी पुलिस का नाम सुनकर ही ख़ौफ़ खाते हैं। ग़रीबों के प्रति तो पुलिस का पशुवत रवैया गली-मुहल्लों और नुक्कड़-चौराहों पर हर रोज़ ही देखा जा सकता है। भारतीय पुलिस टॉर्चर, फ़र्जी मुठभेड़, हिरासत में मौत, हिरासत में बलात्कार आदि जैसे मानवाधिकारों के हनन के मामले में पूरी दुनिया में कुख़्यात है। महिलाओं के प्रति भी पुलिस का दृष्टिकोण मर्दवादी और संवेदनहीन ही होता है जिसकी बानगी आये दिन होने वाली बलात्कार की घटनाओं पर आला पुलिस अधिकारियों की टिप्पणियों में ही दिख जाती है जो इन घटनाओं के लिए महिलाओं को ही ज़िम्मेदार ठहराते हैं। भारतीय पुलिस के चरित्र को लेकर कुछ वर्षों पहले इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जस्टिस आनन्द नारायण मुल्ला ने एक बेहद सटीक टिप्पणी की थी कि भारतीय पुलिस जैसा संगठित अपराधियों का गिरोह देश में दूसरा कोई नहीं है।

जब पुलिस के डण्डे से राज्यसत्ता जनता को क़ाबू में नहीं कर पाती तो उसका अगला अगला मोहरा होता है आरए एफ, सीआरपीएफ, बीएसएफ जैसे अर्द्ध-सुरक्षा बल जो अत्याधुनिक हथियारों से लैस होते हैं और लोगों का बर्बर दमन करने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षण प्राप्त होते है। आज़ादी के बाद भारतीय बुर्जुआ राज्यसत्ता ने अपनी ताकत सुदृढ़ करने के लिए कई नए अर्द्ध-सुरक्षा बलों की स्थापना की और इनमें जवानों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोत्तरी की है। इनकी उपस्थिति मात्र से एक दहशत भरा माहौल पैदा हो जाता है। इस दहशत भरे माहौल का इस्तेमाल राज्यसत्ता जनान्दोलनों को डराने-धमकाने के लिए बखूबी इस्तेमाल करती है। किसी भी जन-प्रदर्शन और जुलूस के दौरान ये अर्द्ध-सुरक्षा बल अपनी लाठियों और हथियारों सहित इसीलिए तैनात किये जाते हैं कि जनता एक सीमा से आगे अपने अधिकारों का सवाल उठाने के पहले ही दहशत में आ जाये। इसके अतिरिक्त इन अर्द्ध-सुरक्षा बलों का इस्तेमाल अलगाववादी आन्दोलनों और जनविद्रोहों को भी बर्बरता से कुचलने में किया जाता है।

भारतीय राज्यसत्ता की हिफ़ाजत में तैनात सुरक्षा बलों के शीर्ष पर फ़ौज होती है जो न सिर्फ़ बाहरी आक्रमण का मुकाबला करने के लिए प्रशिक्षित होती है बल्कि देश के भीतर भी जन-बग़ावतों पर क़ाबू पाने के लिए भी विशेष रूप से प्रशिक्षित प्राप्त होती है। जम्मू-कश्मीर और उत्तर-पूर्व जैसे इलाकों में, जहाँ जनता अपने आत्मनिर्णय के अधिकार को लेकर आन्दोलित है, फौज का दबदबा इतना ज़्यादा है कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वहाँ सैनिक शासन जैसी स्थिति है। इन इलाकों में कुख़्यात सुरक्षा बल विशेषाधिकार कानून (ए.एफ.एस.पी.ए;) लागू है जो वस्तुतः सेना को किसी भी प्रकार की जवाबदेही से मुक्त करता है। पिछले कुछ वर्षों से नक्सलवाद से प्रभावित इलाकों में भी सेना को भेजने की बातें चल रही हैं।

हालाँकि पिछले कई दशकों से भारत का किसी भी देश के साथ प्रत्यक्ष युद्ध नहीं हुआ है, फिर भी भारतीय सेना की गिनती दुनिया की सबसे भारी भरकम सेनाओं में होती है। आज़ादी के बाद से ही साल-दर-साल भारतीय राज्यसत्ता अपनी सेना को चुस्त-दुरुस्त और अत्याधुनिक हथियारों से लैस करती आयी है। हथियारों के आयात के मामले में भारत आज विश्व में अव्वल नम्बर पर है। जिस देश में दुनिया के सबसे अधिक बच्चे भूख और कुपोषण के शिकार हों और दुनिया की सबसे ज़्यादा महिलायें एनीमिया की शिकार हों, वह देश अगर दुनिया का सबसे बड़ा हथियारों का आयातक है तो इसी से इस राज्यसत्ता का बर्बर जनविरोधी चरित्र उजागर हो जाता है। जब सरकार को भूख, कुपोषण और ग़रीबी से निज़ात दिलाने की उसकी ज़िम्मेदारी के प्रति आगाह किया जाता है तो उसके नुमाइंदे और शासक वर्गों के टुकड़ों पर पलने वाले तमाम बुद्धिजीवी सब्सिडी का अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले बुरे असर के बारे में अख़बारों के पन्ने भर डालते हैं और टीवी स्टूडियों में लम्बी-लम्बी बहसें करते हैं, परन्तु इनमें से कोई भी यह सवाल नहीं उठाता कि भला ऐसा क्यों है कि इस 'शान्तिप्रिय' देश में हथियारों की प्राथमिकता भोजन और दवाओं से ज़्यादा है! भारत में श्रम की अनुत्पादकता पर हाय-तौबा मचाने वाले ये कलमघसीट सेना के रूप में इतनी विराट अनुत्पादक संस्था की मौजूदगी पर कभी कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगाते। सच्चाई तो यह है कि भारत का शासक वर्ग अपनी शान्तिप्रियता का चोंगा कब का उतार कर फेंक चुका है। आज भारतीय सेना दुनिया की साम्राज्यवादी सेनाओं के साथ कंधे से कंधा मिला कर युद्धाभ्यास करती है और यहाँ का शासक वर्ग खुद के साम्राज्य के बारे में ख़्वाब देखता है, भले ही यहाँ पर भूख, कुपोषण और बीमारी से दम तोड़ने वालों की संख्या में लगातार वृद्धि होती जा रही है।

• • •

'कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किसकी सेवा करता है'
लेखक : आलोक रंजन व आनन्द सिंह
प्रकाशक : राहुल फ़ाउण्डेशन
सम्पर्क : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ 226020
फ़ोन : 9721481546
वेबसाइट : janchetnabooks.org

केन्द्रीय बजट 2025-26 : मज़दूरों, ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यवर्ग की क़ीमत पर अमीरों को राहत और पूँजीपतियों और धन्नासेठों को लूटने की पूरी छूट का बेशर्म दस्तावेज़

(पेज 1 से आगे)

ही है। हम आगे इस प्रश्न पर विस्तार से बात करेंगे।

इसी प्रकार, उस दूसरी समस्या के समाधान के बारे में भी बजट में कोई उपाय नहीं किये गये हैं, जिसका देश की आम जनता, विशेष तौर पर मज़दूर और ग़रीब किसान, सामना कर रहे हैं, यानी, महँगाई। इस समय महँगाई के मूल कारण क्या हैं? महँगाई के मूल कारण भी भारी जीएसटी करों का बोझ, पेट्रोल व डीज़ल पर भारी कर, खाद्यान्नों पर एमएसपी के कारण उनकी बढ़ी हुई क़ीमतें, व्यापारियों, आढ़तियों आदि द्वारा की जाने वाली जमाखोरी और दूसरी ओर जनता की घटती वास्तविक आय। क्या इस समस्या के इन दोनों पहलुओं के बारे में मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल के पहले बजट में कोई भी क़दम उठाया गया है? हाँ, वे क़दम उठाये गये हैं जो इस समस्या को और भी ज़्यादा विकराल बना देंगे। इन पर भी आगे विस्तार से आँकड़ों समेत बात करेंगे।

फिलहाल, यह देख लेते हैं कि मौजूदा बजट में देश की जनता के लिए क्या है और पूँजीपतियों, यानी कारखाना-मालिकों, धन्नासेठों, धनी पूँजीवादी किसानों व कुलकों, ठेकेदारों, धनी व्यापारियों और तरह-तरह के दलालों और बिचौलियों के लिए क्या है।

जनता बेहाल, पूँजीपति मालामाल

सबसे पहले बजट के प्रमुख पहलुओं पर एक निगाह डाल लेते हैं। 2025-26 के बजट में सरकार द्वारा रु. 50,65,345 ख़र्च करने का अनुमान है। यह पिछली बार से 7.4 प्रतिशत ज़्यादा है। सरकार का अनुमान है कि उसकी आय का प्रमुख स्रोत, यानी टैक्सों, से होने वाली आमदनी पिछली बार से 11 प्रतिशत ज़्यादा होगी। ध्यान रखें कि इसी बजट में कारपोरेट टैक्स में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है और मोदी सरकार ने अपने कार्यकाल में ही इसे पहले ही काफ़ी कम कर दिया था। साथ ही, आयकर के कवरेज को घटा दिया गया है और रु. 12 लाख तक की वार्षिक आय वाले को अब वास्तव में कोई आयकर नहीं देना होगा। अब तक रु. 7 लाख प्रति वर्ष की आय वाले को कोई आयकर नहीं देना पड़ता था। ज़ाहिर है, इस बदलाव का सबसे बड़ा फ़ायदा खाते-पीते मध्यवर्ग और उच्च वर्ग को मिलेगा। अर्थशास्त्रियों के अनुसार, इसका लाभ भारत की आबादी के ऊपर के 3 करोड़ लोगों को ही मिलेगा, जो कि देश की कुल आबादी का 2.1 प्रतिशत है। लेकिन इसके बावजूद सरकार का अनुमान है कि टैक्सों से उसे होने वाली आमदनी में 11 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी होगी। *यह बढ़ोत्तरी कहाँ से होगी?* यह बढ़ोत्तरी होगी व्यापक मेहनतकश जनता, यानी मज़दूर, अर्द्धसर्वहारा, ग़रीब किसान व निम्न मध्यवर्ग पर अप्रत्यक्ष करों के बोझ को बढ़ाकर, जिसे मोदी सरकार ने पिछले 10 वर्षों में पहले ही काफ़ी बढ़ाया है। अप्रत्यक्ष करों का यह बढ़ता बोझ ही वास्तव में बढ़ती महँगाई का सबसे बड़ा कारण है। इसके अलावा, स्टार्ट अप, यानी नये उद्यम शुरू करने वाले पूँजीपतियों को भी तीन वर्षों तक करों से मुक्ति दे दी गयी है। 12 लाख प्रति वर्ष से ऊपर की आय वालों पर, यानी उच्च मध्य वर्ग के ऊपर हिस्सों और धनी वर्गों पर भी आयकर की दरों को घटा दिया गया है। नतीजतन, देश के सबसे अमीर 2 प्रतिशत लोगों को मोदी सरकार ने भरपूर फ़ायदा पहुँचाया है। सरकार को उम्मीद है कि इससे इन वर्गों के लोग ज़्यादा ख़रीदारी करेंगे और घरेलू प्रभावी माँग में वृद्धि होगी और साथ ही उन्हें निवेश करने का प्रोत्साहन मिलेगा।

बजट के पेश किये जाने के ठीक पहले घरेलू उपभोक्ता ख़र्च सर्वेक्षण के आँकड़े सामने आये हैं। ये आँकड़े जो तस्वीर पेश करते हैं वे स्पष्ट कर देते हैं कि कराधान प्रणाली में किये गये बदलावों का देश के ग़रीबों को कोई लाभ नहीं मिलने वाला है। इसके अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में औसतन चार सदस्यों वाले परिवारों की औसत मासिक आय है रु. 8,316, यानी रु. 99,792 प्रतिशत वर्ष। वहीं शहरी क्षेत्रों में औसतन चार सदस्यों वाले परिवारों की औसत मासिक आय है रु. 14,528 यानी रु. 1,74,336 प्रति वर्ष। भला इस मेहनतकश आबादी को टैक्सों में दी गयी छूट से क्या लाभ मिलने वाला है? आयकर तो यह आबादी पहले भी नहीं देती थी। वह तो मुख्य तौर पर जीएसटी व पेट्रो उत्पादों पर लगने वाले भारी लूटपाट टैक्स के कारण बढ़ती महँगाई से पीड़ित है।

भारत सरकार की आय के हर 1 रुपये में से 66 पैसे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर से आयेंगे। इसमें से प्रत्यक्ष करों में आयकर और कारपोरेट टैक्स शामिल हैं। कारपोरेट टैक्स से मात्र 17 पैसे आयेंगे जबकि आयकर से 22 पैसे आयेंगे। दूसरी ओर, अप्रत्यक्ष करों से कुल 27 पैसे आयेंगे, जिसमें से अकेले जीएसटी से 18 पैसे आयेंगे जबकि एक्साइज़ शुल्क से 5 पैसे और कस्टम शुल्क से 4 पैसे आयेंगे। मोदी सरकार के ही कार्यकाल में कारपोरेट टैक्स की दर को भारतीय कम्पनियों के लिए 30 प्रतिशत से घटाकर 30 से 25 प्रतिशत कर दिया गया, जो प्रभावी तौर पर घटते हुए अब 22 प्रतिशत तक पहुँच गया है, और आगे इसे और घटाने का प्रस्ताव है। विदेशी कम्पनियों के लिए कारपोरेट टैक्स को इसी दौर में 40 प्रतिशत से घटाकर 35 प्रतिशत कर दिया गया। कुल टैक्स राजस्व में मोदी सरकार के दौर में ही कारपोरेट टैक्स का हिस्सा लगातार घटते हुए लगभग 34-35 प्रतिशत से 25 प्रतिशत के करीब आ चुका है। दूसरी तरफ़, 2011 से ही अप्रत्यक्ष करों में लगातार वृद्धि हुई है। अगर राज्यों व केन्द्र दोनों के करों से होने वाले राजस्व की बात करें, तो उसमें 2011 से अप्रत्यक्ष करों का हिस्सा 57-58 प्रतिशत से बढ़कर आज लगभग 66 प्रतिशत तक पहुँच चुका है।

इन आँकड़ों का हम मेहनतकश लोगों के लिए मतलब क्या है? मतलब यह है कि एक ओर हम अपनी मेहनत से देश के पूँजीपतियों और धन्नासेठों के लिए मुनाफ़ा पैदा करें और उनकी तिजोरियाँ भरें और उसके बाद हम पर ही टैक्सों का बोझ भी सबसे ज़्यादा लाद दिया जाय, जबकि परजीवी पूँजीपति वर्ग को टैक्सों से लगातार छूट दी जाय। मोदी सरकार ने मन्दी के दौर में ये क़दम पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की दर को बढ़ाने के लिए उठाये हैं, ताकि वह अपनी निवेश की दर को बढ़ाये। *लेकिन यह हो ही नहीं पा रहा है क्योंकि मुनाफ़े की औसत दर के गिरने के संकट के कारण कहीं और हैं और पूँजीपतियों पर लगने वाले टैक्सों को घटाकर उसका समाधान नहीं किया जा सकता है।* आगे हम समझेंगे कि ये संकट क्या है और किस प्रकार यह बढ़ती बेरोज़गारी और महँगाई के लिए ज़िम्मेदार है।

अप्रत्यक्ष करों में एक भारी हिस्सा पेट्रोल, डीज़ल आदि पेट्रो उत्पादों पर लगने वाले टैक्सों का है। मोदी सरकार के बनने के समय कच्चे तेल की अन्तरराष्ट्रीय कीमत थी 136 डॉलर प्रति बैरल। आज यह कीमत है 73.81 डॉलर प्रति बैरल। इसी बीच, मोदी सरकार के सत्ता में आने के समय भारत में पेट्रोल की कीमत थी रु. 71.41 प्रति लीटर, जबकि आज उसकी कीमत है रु. 95 से रु. 103 के बीच है। डीज़ल की कीमत मई 2014 में, यानी मोदी सरकार बनने के समय थी रु. 55.49 प्रति लीटर और आज यह कीमत है रु. 87.92 से रु. 90 के बीच। *यानी दुनिया में तेल की कीमत घटती रही और मोदी सरकार के राज में तेल की कीमत बढ़ती रही। क्यों?* क्योंकि मोदी सरकार के दौर में इस पर टैक्सों का भारी बोझ लाद दिया गया है। एक्साइज़, कस्टम, आईजीएसटी, सीजीएसटी, सेवा कर, सेस, रॉयल्टी, सरचार्ज, डिविडेण्ड आदि करों के नाम पर नये-नये करों को बढ़ा-चढ़ाकर पेट्रोल व डीज़ल पर थोपा जाता रहा है।

2015 से 2023 के बीच में मोदी सरकार ने तेल पर लगने वाले करों से रु. 31.6 लाख करोड़ बटोरे और राज्य सरकारों ने (जिसमें से अधिकांश भाजपा सरकारें ही थीं) ने रु. 19.9 लाख करोड़ बटोरे, यानी कुल 51.5 लाख करोड़ रुपये। तेल पर लगने वाले टैक्सों में मोदी सरकार के दौर में ही लगभग 250 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है, वह भी ठीक उस समय जब दुनिया में तेल की कीमत गिर रही थी और रूस-यूक्रेन युद्ध के कारण 2021-22 में हुई बढ़ोत्तरी के बावजूद भारत को 110 डॉलर प्रति बैरल कच्चे तेल की अन्तरराष्ट्रीय कीमत के मुकाबले रूस से 60 डॉलर प्रति बैरल कच्चा तेल मिल रहा था! यह देश की जनता की नंगी लूट नहीं है तो और क्या है? लेकिन मोदी सरकार को पूँजीपतियों को दी जा रही भारी कर छूट से होने वाले नुकसान की भरपाई करनी थी और यह देश की मेहनतकश जनता पर करों का बोझ बढ़ाकर ही किया जा सकता था। मौजूदा बजट यानी 2025-26 के बजट में भी जनता को इस बोझ से कोई राहत नहीं दी गयी है।

अब जीएसटी की स्थिति पर भी एक निगाह डाल लेते हैं। 2018 से 2024 के बीच में मोदी सरकार ने जीएसटी में 116 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की। जुलाई 2022 में मोदी सरकार ने उन खाने-पीने की वस्तुओं पर भी 5 प्रतिशत जीएसटी लगा दिया जिनका आम तौर पर देश की मेहनतकश जनता उपभोग करती है, मसलन, गेहूँ, चावल, दही, चूड़ा, लस्सी, मीट और मछली आदि, चाहे ये वस्तुएँ ब्राण्डेड हों या न हों। यहाँ तक कि स्कूली बच्चों की कॉपियों-किताबों तक पर टैक्स लगाने का काम मोदी सरकार ने किया। इसके अलावा, अन्य लगभग सभी रोज़ाना के इस्तेमाल के सामानों पर भारी जीएसटी लगाया जा रहा है।

मुख्य तौर पर, इन दोनों करों, यानी पेट्रोल व डीज़ल पर लगने वाले करों तथा जीएसटी के कारण ही महँगाई आसमान छू रही है। पेट्रोल व डीज़ल पर कर बढ़ने का अर्थ होता है हर वस्तु का महँगा होना। वजह यह कि इनकी बढ़ती कीमतों का असर परिवहन, संसाधन, आदि के महँगा होने के कारण हर चीज़ को ही महँगा कर देता है।

मौजूदा बजट में भी पूँजीपतियों को छूट और जनता की लूट की नीतियों को मोदी सरकार ने बदस्तूर जारी रखा है। मीडिया में कहीं भी, ग़रीब आदमी के लिए इस बजट में क्या है, इसका कोई ज़िक्र नहीं है। समूचा गोदी मीडिया व अन्य पूँजीवादी मीडिया इस बात पर ताली पीट रहा है कि उच्च मध्यवर्ग के पहले से बड़े हिस्से को आयकर में छूट दे दी गयी है। वैसे भी अब पूँजीवादी मीडिया में विमर्श अब मध्यवर्ग से नीचे जाता ही नहीं है, हम मज़दूर-मेहनतकश दुनिया की सारी समृद्धि पैदा करने के बाद उनकी निगाह में अदृश्य ही रहते हैं। वास्तव में आयकर में दी गयी यह छूट कुल आबादी के मात्र 2 प्रतिशत को लाभ पहुँचाती है। इस पर कोई चर्चा नहीं कर रहा है। वजह यह है कि इस मीडिया का भी एक वर्ग चरित्र है और वह उसी के अनुसार बर्ताव कर रहा है।

बजट के जिस दूसरे हिस्से से आम मेहनतकश जनता का विशेष सरोकार होता है वह होता है जनता को प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: लाभ पहुँचाने वाली योजनाओं, उपक्रमों व नीतियों पर सरकारी ख़र्च का हिस्सा। अगर सकल घरेलू उत्पाद के एक हिस्से के रूप में सरकारी ख़र्च की बात करें तो वह मौजूदा बजट में 14.6 प्रतिशत से घटकर 14.2 प्रतिशत रह गया है। ऊपर से जारी वर्ष में सरकार ने अनुमानित सरकारी ख़र्च से 1 लाख करोड़ रुपये कम ख़र्च किया है।

अगर खाद्य सुरक्षा व भोजन पर ख़र्च की बात करें, तो पिछले बजट में इसके लिए 2.05 लाख करोड़ आबण्टित थे, लेकिन सरकार ने वास्तव में इससे 7830 करोड़ कम ख़र्च किये थे और इस साल इस आबण्टन को ही घटाकर रु. 2.03 लाख करोड़ कर दिया गया है। ऐसा उस समय किया गया है जब खाद्य पदार्थों की लगातार बढ़ती महँगाई और ठहरावग्रस्त वेतन व मज़दूरी के कारण आम मेहनतकश जनता की खाद्य असुरक्षा अभूतपूर्व स्तर पर है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को नष्ट करने का काम मोदी सरकार निरन्तर कर ही रही है। इसी प्रकार, पिछले वर्ष के बजट में 1.26 लाख रुपये शिक्षा के लिए आबण्टित किये गये थे, लेकिन उससे भी रु. 11,584 करोड़ कम ख़र्च हुए। इस बार शिक्षा के लिए बजट आबण्टन में कहने को रु. 3012 करोड़ की बढ़ोत्तरी हुई है, यानी 2.3 प्रतिशत की। लेकिन अगर इसे मुद्रास्फीति से, यानी रुपये के घटते मूल्य से प्रति-सन्तुलित किया जाय तो बढ़ोत्तरी शून्य के क़रीब बैठेगी और यह राशि भी पहले की तरह अगर पूरी ख़र्च नहीं की गयी तो फिर इस आबण्टन का भी कोई विशेष अर्थ नहीं रह जाता है।

इसी प्रकार रसोई गैस के लिए दी जाने वाली सब्सिडी को 14.7 हज़ार करोड़ रुपये से घटाकर 12 हज़ार करोड़ रुपये कर दिया गया है। यानी इस साल आप सब्सिडाइज़्ड रेट पर होने वाली रसोई गैस की आपूर्ति में कमी और उसकी क़ीमत में बढ़ोत्तरी की उम्मीद कर सकते हैं। इसी प्रकार, मनरेगा के लिए पिछले बजट में आबण्टित राशि में एक रुपया भी बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है, यानी रु. 86,000 करोड़। इसे अगर रुपये के गिरते मूल्य के साथ देखें, तो हम पायेंगे कि मनरेगा की राशि में

(पेज 14 पर जारी)

केन्द्रीय बजट 2025-26 : मज़दूरों, ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यवर्ग की क़ीमत पर अमीरों को राहत और पूँजीपतियों और धन्नासेठों को लूटने की पूरी छूट का बेशर्म दस्तावेज़

(पेज 13 से आगे)

वास्तविक अर्थों में कमी आयी है। यहाँ भी सरकार की पक्षधरता साफ़ है। मनरेगा का जो थोड़ा-बहुत लाभ होता है, वह गाँव के ग़रीबों, यानी ग्रामीण मज़दूरों, ग्रामीण अर्द्धसर्वहारा और छोटे व परिधिगत किसानों को होता है। लेकिन इसके कारण धनी किसानों व कुलकों के समक्ष उनकी ग़रज़मन्दी कम हो जाती है और उनकी मोलभाव की क्षमता बढ़ती है। यही कारण है कि एमएसपी के रूप में अपने लिए अतिरिक्त लाभ के अधिकार के लिए लड़ रहे धनी किसान व कुलक अपने आन्दोलन में भीड़ के तौर पर ग्रामीण मज़दूरों और ग़रीब किसानों की जुटान तो चाहते हैं, लेकिन स्वयं ग़रीब किसानों व ग्रामीण मज़दूरों के मसलों पर उनका साथ नहीं देते। मसलन, वे कभी यह माँग नहीं उठाते कि ग्रामीण मज़दूरों को श्रम कानूनों के मातहत लाया जाय और उनके श्रम अधिकार दिये जायें। माकपा व भाकपा जैसी संशोधनवादी पार्टियों से उनके रिश्ते हैं और उनकी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के समर्थन के लिए वे मोदी के चार लेबर कोड के विरोध का ज़ुबानी जमाख़र्च ज़रूर करते हैं क्योंकि औद्योगिक मज़दूरों पर ये लेबर कोड थोपे जाएँ या न थोपे जाएँ, इससे खेतिहर पूँजीपति वर्ग को कोई विशेष फ़र्क नहीं पड़ता है। *लेकिन वे खेतिहर मज़दूरों के लिए श्रम कानूनों की सुरक्षा की माँग क्यों नहीं करते? वे ग़रीब किसानों को असंस्थागत अनौपचारिक ऋणों की माफ़ी की माँग क्यों नहीं करते, जो स्वयं उन्होंने ही बेहद ऊँची ब्याज दरों पर गाँव के ग़रीबों को दिये हैं? वे इन ग़रीब किसानों के लिए संस्थागत सरकारी ऋण के अधिकार की माँग क्यों नहीं करते? वे खेती के क्षेत्र में सरकारी अवरचना निर्माण, मसलन सिंचाई की सरकारी व्यवस्था, खेती के इनपुट्स को ग़रीब किसानों को सब्सिडी बढ़ाकर रियायती दरों पर देने, आदि की माँग क्यों नहीं करते?* क्योंकि ग़रीब किसानों व ग्रामीण अर्द्धसर्वहारा वर्ग को इन सारी सहूलियतों की कमी होने का फ़ायदा धनी किसान व भूस्वामी ख़ुद उठाते हैं और वाणिज्यिक मुनाफ़े, कमीशन, सूद, लगान आदि के ज़रिये गाँव के ग़रीबों को लूटते हैं। यही सच्चाई है, चाहे हमारे देश के कुलकवाद और नरोदवाद में अन्धे कुछ "कॉमरेड" इस बात को मानें या न मानें। कोई भी गाँव का ग़रीब उन्हें इस सच्चाई के बारे में बता देगा।

मोदी सरकार ने निश्चित ही एमएसपी की कानूनी गारण्टी धनी किसानों व कुलकों को नहीं दी है, हालाँकि एमएसपी खेतिहर बुर्जुआज़ी को आज भी मिल रहा है। मिसाल के तौर पर, 2024-25 के रबी सीज़न में 266 लाख मीट्रिक टन गेहूँ की ख़रीद एमएसपी पर हुई है, जबकि इसी सीज़न में कुल 61,000 करोड़ रुपये की ख़रीद एमएसपी पर हुई है। लेकिन यह भी सच है कि औद्योगिक व वित्तीय पूँजीपति वर्ग एमएसपी की व्यवस्था को जारी नहीं रखना चाहता है। यह खेतिहर पूँजीपति वर्ग और बाकी पूँजीपति वर्ग के बीच का अन्तरविरोध है। क्यों? इसलिए कि एमएसपी खाद्यान्नों की कीमतों को बढ़ाकर औसत मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा करता है, जो कि मुनाफ़े की औसत दर को गिराने की सम्भावनासम्पन्नता रखती है। यही वजह है कि खेतिहर पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से को छोड़कर बाकी पूँजीपति वर्ग एमएसपी की व्यवस्था का ख़ात्मा चाहता है। लेकिन सिर्फ़ इसलिए देश के मज़दूरों और मेहनतकशों को एमएसपी की व्यवस्था का समर्थन कतई नहीं करना चाहिए। क्योंकि एमएसपी की व्यवस्था उनके हितों के ख़िलाफ़ जाती है, क्योंकि यदि मज़दूर संगठित होकर अपनी मज़दूरी को बढ़वाने में असफल होते हैं, तो एमएसपी के कारण महँगे होने वाले भोजन का अर्थ होगा उनकी वास्तविक मज़दूरी में कमी क्योंकि उन्हें अपनी मज़दूरी का पहले से बड़ा हिस्सा भोजन पर ख़र्च करना पड़ता है। दूसरी बात, एमएसपी बढ़ने से निश्चित तौर पर देश के आम मेहनतकश अवाम को कोई लाभ नहीं होता है, बल्कि नुकसान ही होता है।

जहाँ तक देश की व्यापक मेहनतकश दलित व आदिवासी आबादी का सवाल है, तो मोदी सरकार ने पहले की ही तरह इस बार के बजट में भी उनकी अनदेखी जारी रखी है। पिछले बजट में ही दलितों के कल्याण हेतु आबण्टित मद में रु. 27,000 करोड़ की कटौती की गयी थी जबकि आदिवासी आबादी के कल्याण हेतु आबण्टित मद में रु. 17,000 करोड़ की कटौती की गयी थी। इस बार भी दलितों व आदिवासियों के कल्याण हेतु बजट का क्रमश: 3.4 प्रतिशत व 2.6 प्रतिशत हिस्सा ही रखा गया है।

प्रधानमन्त्री आवास योजना-शहरी के लिए 2024-25 में रु. 30,171 करोड़ आबण्टित किये गये थे। इस बार उसे घटाकर रु. 19,794 करोड़ कर दिया गया है। यह दीगर बात है कि पिछले साल भी आबण्टित राशि चाहे जो भी हो, सरकार ने इस योजना के तहत ख़र्च केवल रु. 13,670 करोड़ किये थे। अब तो आबण्टन ही घटा दिया गया है तो उम्मीद की जा सकती है कि इस पर ख़र्च और भी ज़्यादा कम होगा। इसी प्रकार पीने की पानी की गम्भीर समस्या झेलने वाले हमारे देश में जल जीवन मिशन भी एक भारी घपला साबित हुआ है। 2024-25 में इसके मद में कहने को रु. 70,163 करोड़ रखे गये थे, लेकिन उसमें से केवल 32 प्रतिशत, यानी रु. 22,694 करोड़ ही ख़र्च किये गये! इस साल आबण्टन को ही घटाकर रु. 67,000 करोड़ कर दिया गया है, तो ख़र्च क्या होगा इसका अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। इन सभी योजनाओं की ख़र्च न की जाने वाली राशि या तो पूँजीपतियों के हवाले कर दी जाती है, या उसे देश के नेताओं-नौकरशाहों की अय्याशियों पर उड़ा दिया जाता है, जबकि लोगों के पास पक्के घर, पीने का पानी, पर्याप्त व पोषणयुक्त भोजन तक नहीं होता है।

स्कूल में मिड-डे मील की योजना, जिसे पीएम-पोषण योजना कहा जाने लगा है, के लिए बजट आबण्टन को रु. 12,467 हज़ार से बढ़ाकर रु. 12,500 करोड़ कर दिया गया है, जो कि इतनी मामूली बढ़ोत्तरी है, जिसे मुद्रास्फीति के साथ तुलना करके देखें, तो हम पाते हैं कि वास्तव में इस योजना के तहत आबण्टन में वास्तविक कमी की गयी है। ऐसे में, दसवीं तक के बच्चों को इस योजना के तहत लाने और उनके आहार में अण्डा, दूध व फलों को जोड़ना सपने के समान है। यानी मोदी सरकार के दौर में धीरे-धीरे करके इस योजना का भी बण्टाधार किया जा रहा है। स्वास्थ्य व परिवार कल्याण विभाग के बजट में पिछले वर्ष की तुलना में 9.5 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है, लेकिन यह हर पैमाने पर अपर्याप्त है। पिछले वर्ष भी संशोधित अनुमान के तहत राशि को करीब रु. 1000 करोड़ घटा दिया गया था। स्वयं सरकारी व गैर-सरकारी कमेटियों ने बार-बार कहा है कि अगर देश में जनता के स्वास्थ्य के अधिकार को सुनिश्चित करना है, तो स्वास्थ्य के लिए बजट आबण्टन दोगुना करना होगा। यानी इस बार बजट में इसके लिए आबण्टित राशि (रु. 96,000 करोड़) को दोगुना कर करीब 2 लाख करोड़ रुपये तक पहुँचाना होगा। लेकिन मोदी सरकार इसका उल्टा कर रही है। या तो इसमें कोई बढ़ोत्तरी ही नहीं की जा रही है, या फिर वास्तविक मूल्य के रूप में उसमें कमी की जाती रही है। विशेष तौर पर, बुनियादी धरातल पर प्राथमिक स्वास्थ्य देखरेख का काम देखने वाली राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना के मदों में कटौती की जा रही है। इस बार इसमें नॉमिनल तौर पर 3.4 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है, जो कि वास्तव में कटौती है। इसे रु. 36,000 करोड़ से बढ़ाकर रु. 37,223 करोड़ कर दिया गया है। लेकिन रुपये की गिरावट से इसे प्रतिसन्तुलित करने पर सच्चाई का पता चलता है। जिस चीज़ के बजट में बढ़ोत्तरी की गयी है, वह एक ऐसी योजना है जिसका लाभ वास्तव में निजी बीमा क्षेत्र के पूँजीपतियों यानी कम्पनियों को मिलेगा, यानी, पीएम जन आरोग्य योजना। यह एक बीमा योजना है, न कि सरकारी स्वास्थ्य देखरेख योजना। इसके तहत, 29 प्रतिशत फण्ड की बढ़ोत्तरी कर उसे रु. 7,300 करोड़ से रु. 9,406 करोड़ कर दिया गया है। यहाँ निजी बीमा कम्पनियों को सरकार द्वारा धन दिया जाता है, जबकि यह धन सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था को मज़बूत बनाने में इस्तेमाल किया जा सकता था।

कहने को सक्षम आँगनवाड़ी योजना व पोषण 2.0 के लिए आबण्टन में लगभग 13 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है। लेकिन यदि हम पोषण 2.0 के तहत आबण्टित फण्ड को देखते हैं, तो पाते हैं कि इसे रु. 21,200 करोड़ से बढ़ाकर 21,960 करोड़ किया गया है, जो मुद्रास्फीति को जोड़ने पर वास्तव में कटौती है। 2023-24 में तो यह फण्ड रु. 21,809 करोड़ था! यानी दो वर्ष पहले की तुलना में मात्र रु. 150 करोड़ की बढ़ोत्तरी जो कि वास्तविक मूल्य में कटौती है। जब सरकारी आँकड़ों के अनुसार ही 6 वर्ष तक के 37 प्रतिशत बच्चे यानी 6 करोड़ बच्चे अवरुद्ध विकास का शिकार हैं, और उनमें से 17 प्रतिशत यानी करीब 2.7 करोड़ बच्चे कम वज़न के शिकार हैं, तो ऐसी बढ़ोत्तरी क्या देश के मेहनतकश ग़रीब लोगों के साथ मोदी सरकार का एक भद्दा मज़ाक नहीं है? वास्तव में, पिछले 7 वर्षों में मोदी सरकार ने इस योजना के तहत आने वाले बच्चों के लिए प्रति बच्चा 5 पैसे की बढ़ोत्तरी की है! इस योजना के लाभार्थी करीब 8 करोड़ बच्चे और 2 करोड़ गर्भवती औरतें हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये आम मेहनतकश घरों के बच्चे और औरतें हैं। मोदी सरकार ने बजट में 2 लाख सक्षम आँगनवाड़ियाँ बनाने की बात की है, जबकि आज 3.38 लाख आँगनवाड़ियों में पीने योग्य पानी और 4.61 लाख आँगनवाड़ियों में शौचालय तक की व्यवस्था नहीं है। करीब 13 लाख आँगनवाड़ी वर्करों और करीब 11.64 लाख आँगनवाड़ी हेल्परों को स्थायी सरकारी कर्मचारी दर्जा देने के बारे में बजट में कोई ज़िक्र तक नहीं किया गया है। सुप्रीम कोर्ट के आँगनवाड़ी कर्मचारियों को ग्रैच्युटी देने के आदेश और गुजरात हाई कोर्ट के इन कर्मचारियों को ग्रेड-3 व ग्रेड-4 के सरकारी कर्मचारियों के रूप में नियमित करने के आदेश की ख़ुद केन्द्र सरकार ही अवहेलना कर रही है। अन्य स्कीम वर्करों, मसलन आशा वर्करों को भी बजट ने इसी प्रकार नज़रन्दाज़ किया है। मोदी सरकार की प्राथमिकताएँ यहाँ भी स्पष्ट हैं।

एक बात स्पष्ट है : देश की जनता इस समय जिन दो सबसे बड़ी समस्याओं का सामना कर रही है, यानी बेरोज़गारी और महँगाई, उसके बारे में मोदी सरकार ने कोई भी क़दम नहीं उठाया है, या कहें, वे क़दम उठाये हैं जो इन समस्याओं को आने वाले समय में बढ़ाने वाले हैं।

इन दोनों समस्याओं पर अलग से कुछ विचार ज़रूरी है, क्योंकि इनके बारे में देश के सुधारवादी और संशोधनवादी मज़दूरों और मेहनतकशों के सामने काफ़ी धुंध फैलाते हैं।

बेरोज़गारी की समस्या का असली कारण, मौजूदा बजट और संसदीय वामपंथियों व सुधारवादियों के असुधारणीय विभ्रम

बेरोज़गारी की समस्या ढाँचागत तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा अपने नैसर्गिक गति से पैदा होती है। वजह यह कि पूँजीवादी व्यवस्था को अपनी प्रकृति से ही हमेशा बेरोज़गारों की एक रिज़र्व फ़ौज़ की ज़रूरत होती है। न तो सरकार द्वारा अधिक सामाजिक ख़र्च करके इसे रोका जा सकता है, न ही बजट घाटे की नीति से। पूँजीवादी सरकारें तेज़ी के दौर में, यानी जब मुनाफ़े की औसत दर ऊँची होती है, तो कुछ तात्कालिक क़दमों के द्वारा बेरोज़गारी की दर में कुछ कमी ज़रूर ला सकती है और बेरोज़गारी को सामाजिक सुरक्षा के तहत बेरोज़गारी भत्ता वगैरह भी दे सकती है, क्योंकि उस समय पूँजीपति वर्ग भी वर्ग संघर्ष की धार को कुन्द करने और शान्ति बनाये रखने के लिए इतना ख़र्च और "कुर्बानी" करने को तैयार होता है। लेकिन आर्थिक संकट के दौर में, यानी जब मुनाफ़े की औसत दर कम हो या गिर रही हो, उस समय पूँजीपति वर्ग ऐसी कल्याणकारी नीतियों की हिमायत कतई नहीं करता है और आम तौर पर किसी ऐसी पूँजीवादी पार्टी की ही सरकार बनवाने का प्रयास करता है, जो हर प्रकार की कल्याणकारिता को तिलांजलि दे दे, यानी वेलफ़ेयर का फ़ेयरवेल कर दे। ऐसे मौक़ों पर देश के व्यापक मेहनतकश अवाम के सामने सर्वहारा वर्ग कहीं ज़्यादा स्पष्टता के साथ पूँजीवादी व्यवस्था की बुनियादी सच्चाई को उजागर कर सकता है और उसके ध्वंस और मज़दूर सत्ता व समाजवाद के निर्माण का एक व्यावहारिक कार्यक्रम और एजेण्डा रख सकता है। लेकिन संशोधनवादी और संसदीय वामपन्थी ठीक ऐसे ही समय में पूँजीवाद की अगली सुरक्षा

(पेज 15 पर जारी)

केन्द्रीय बजट 2025-26 : मज़दूरों, ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यवर्ग की क़ीमत पर अमीरों को राहत और पूँजीपतियों और धन्नासेठों को लूटने की पूरी छूट का बेशर्म दस्तावेज़

(पेज 14 से आगे)

पंक्ति की भूमिका निभाते हुए उसके प्रति विभ्रमों को मेहनतकश अवाम के बीच बढ़ावा देने का काम करते हैं। आज माकपा, भाकपा व भाकपा (माले) भी ठीक यही कर रहे हैं।

देश के संसदीय वामपन्थी मोदी सरकार से माँग कर रहे हैं कि वह अपने सामाजिक ख़र्च में बढ़ोत्तरी करे, जिसके ज़रिये देश में पर्याप्त घरेलू माँग पैदा होगी और जब पर्याप्त माँग पैदा होगी तो मन्दी की समस्या हल होगी, पूँजीपति अधिक निवेश करेंगे और जब पूँजीपति अधिक निवेश करेंगे तो बेरोज़गारी भी कम होगी। कींस की इस सुधारवादी नीति को लागू करने की गुहार भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), यानी माकपा, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी, यानी भाकपा और भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) लगातार लगाते रहते हैं। लेकिन वह असली सवाल ही नहीं पूछते : *घरेलू माँग में कमी है ही क्यों? वह पैदा ही क्यों होती है?* वह इसलिए पैदा होती है क्योंकि पहली बात, मुनाफ़े की औसत दर के संकट के कारण स्वयं पूँजीपति वर्ग पर्याप्त ख़रीदारी नहीं कर रहा है, न तो उत्पादन के साधनों की और न ही उपभोग और लक्ज़री के साधनों की; दूसरा कारण यह है कि देश में पर्याप्त रोज़गार नहीं है और लोगों की औसत आय कम है, जिसकी वजह स्वयं लाभप्रदता का संकट ही है, जिसके कारण देश में निवेश की दर बेहद कम है।

मुनाफ़े की औसत दर इसलिए गिर रही है क्योंकि देश की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में तकनोलॉजी के प्रयोग और मशीनीकरण के बढ़ने की दर, मज़दूरों के बेशी श्रम से पैदा होने वाले बेशी मूल्य की दर से ज़्यादा है। हम मज़दूर जानते हैं कि कि नया मूल्य केवल और केवल जीवित श्रम से पैदा होता है। मशीनें नया मूल्य नहीं पैदा करती हैं। इसे समझने के लिए पल भर के लिए कल्पना करें कि समूची दुनिया में सारा उत्पादन मशीनों द्वारा स्वचालित रूप में होता है और उसमें कोई श्रम नहीं लगता। यानी कोई रोज़गार भी नहीं है। नतीजतन, कोई आय भी नहीं होगी और पूर्ण मशीनीकरण की ऐसी स्थिति में कोई ख़रीदार भी नहीं होगा। क्यों? क्योंकि कोई मूल्य नहीं पैदा हो रहा होगा। उत्पादन में जीवित श्रम द्वारा पैदा होने वाला मूल्य ही अलग-अलग वर्गों की आय के रूप में विभाजित और वितरित होता है, यानी, मुनाफ़े, लगान, ब्याज़ व मज़दूरी के रूप में। ऐसी कोई स्थिति पूँजीवाद में कभी पैदा नहीं हो सकती है और हमने इस काल्पनिक उदाहरण का प्रयोग केवल यह दर्शाने के लिए किया कि नया मूल्य केवल और केवल जीवित श्रम से ही पैदा होता है, मशीनों के द्वारा नहीं। पूँजीवादी व्यवस्था में ऐसा पूर्ण मशीनीकरण सम्भव इसलिए नहीं है क्योंकि पूँजीपति मुनाफ़े के लिए उत्पादन करता है, समाज की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए नहीं। बहरहाल, मशीनें व अन्य कच्चे माल बस उत्पादित होने वाले माल के मूल्य अपने मूल्य को स्थानान्तरित कर जोड़ देते हैं। इसलिए अगर कुल निवेश में जीवित श्रम की मात्रा ही सापेक्षिक रूप से घटती जायेगी, तो मुनाफ़े की दर अन्तत: गिरेगी।

ऐसे में, मुनाफ़े की औसत दर को गिरने से तात्कालिक तौर पर रोकने और यहाँ तक कि बढ़ाने का प्रमुख रास्ता यह होता है कि मज़दूर के श्रम के शोषण की दर को बढ़ाया जाय और इस प्रकार अतिरिक्त मूल्य या बेशी मूल्य की दर को बढ़ाया जाय। जिस दर से श्रमशक्ति के मुकाबले मशीनों व तकनोलॉजी तथा कच्चे माल पर निवेश बढ़ रहा है, अगर बेशी मूल्य उससे ज़्यादा दर से बढ़ता है, तो मुनाफ़े की दर को तात्कालिक तौर पर गिरने से रोका जा सकता है और यहाँ तक कि तात्कालिक तौर पर उसे बढ़ाया भी जा सकता है।

इस बेशी मूल्य की दर को बढ़ाने का दो ही तरीक़ा है: पहला, मज़दूरों के काम घण्टों और उनके श्रम की सघनता को बढ़ाकर (यानी दिये हुए काम के घण्टे में श्रम की अधिक मात्रा को निचोड़कर), जो कि मोदी सरकार के नये लेबर कोड्स का लक्ष्य है और जो इच्छा देश के शीर्ष पूँजीपति हम मज़दूरों से सप्ताह में 90 घण्टे से ज़्यादा काम करवाने और साप्ताहिक छुट्टी ख़त्म करने की बात कहकर ज़ाहिर कर रहे हैं; दूसरा, तकनोलॉजी के ज़रिये श्रम की उत्पादकता में, विशेष तौर पर, उन उत्पादों के उत्पादन में श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करना, जिनका उपभोग आम तौर पर व्यापक मेहनतकश आबादी करती है, यानी मज़दूरी-उत्पाद के उत्पादन में श्रम की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी करना, ताकि मज़दूर की श्रमशक्ति के मूल्य और इसके आधार पर उनकी मज़दूरी में कमी लायी जा सके। ऐसा करने पर मज़दूर अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य के मालों का उत्पादन पहले से कम समय में कर लेगा और मज़दूर का आवश्यक श्रमकाल घटेगा, और यदि कार्यदिवस की लम्बाई समान रहती है या बढ़ती है, तो जिस समय में वह पूँजीपति का मुनाफ़ा पैदा करता है, यानी अतिरिक्त श्रमकाल, वह बढ़ जायेगा। अगर यह बढ़ोत्तरी मज़दूरों के मुकाबले उत्पादन के साधनों पर होने वाले निवेश में हो रही बढ़ोत्तरी से ज़्यादा होगी, तो मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट को तात्कालिक तौर पर रोका जा सकता है और उसे बढ़ाया जा सकता है। लेकिन हमारे देश और पूरी दुनिया की ही उत्पादक अर्थव्यवस्था में श्रम की उत्पादकता में ऐसी कोई बड़ी छलाँग लगती नहीं दीख रही है, जो कि पूँजी-श्रम के बढ़ते अनुपात के कारण, यानी *पूँजी के बढ़ते आवयविक संघटन* के कारण मुनाफ़े की औसत दर में आने वाली गिरावट को रोक सके। नतीजतन, अलग-अलग रूप और परिमाण में दुनिया की अधिकांश पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ पिछले पाँच दशकों से मन्दी से गुज़र रही हैं, जो बीच-बीच में गहरे संकट में भी परिणत होती रहती है। हमारा देश भी इसका अपवाद नहीं है।

आज हमारे देश में बेरोज़गारी की विकराल स्थिति का ढाँचागत कारण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की यही मन्दी है, जिसका कारण पूँजी का बढ़ता आवयविक संघटन, यानी श्रम की तुलना में उत्पादक के साधनों पर बढ़ता निवेश है। भारत में ही 1994-2002 से 2003-2017 के बीच में पूँजी-श्रम का अनुपात 2.8 से दोगुना होकर 5.6 हो गया और उसके बाद भी वह बढ़ता रहा है। यानी, श्रम पर होने वाले ख़र्च की एक इकाई के मुकाबले उत्पादन के साधनों पर होने वाला ख़र्च 2.8 इकाई से बढ़कर इस दौर में 5.6 इकाई हो गया। ऐसा क्यों होता है? दो प्रतिस्पर्द्धाओं के कारण: पहला, पूँजीपतियों के बीच की आपसी प्रतिस्पर्द्धा; दूसरा, पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के बीच का संघर्ष या प्रतिस्पर्द्धा। पूँजीपतियों के बीच की प्रतिस्पर्द्धा होती है बाज़ार में सस्ता से सस्ता बेचने की। जो सबसे सस्ता बेचने में सक्षम होगा, वही बाज़ार के बड़े हिस्से पर कब्ज़ा करने और अपने प्रतिस्पर्द्धियों को पीटने में कामयाब होगा। लेकिन सस्ते से सस्ता माल तभी बेचा जा सकता है, जब माल के उत्पादन की लागत को कम-से-कम किया जा सके। माल के उत्पादन की लागत को कम-से-कम तभी किया जा सकता है, जब श्रम की उत्पादकता को बढ़ाया जा सके, यानी दिये गये श्रमकाल में मज़दूर अधिक से अधिक मात्रा में माल का उत्पादन कर सके। ऐसे में, प्रति इकाई माल की लागत घटेगी और उसे सस्ते से सस्ता बेचने की क्षमता पूँजीपति अर्जित कर सकेगा। लेकिन ऐसा करने के लिए पूँजीपति को अधिक से अधिक पूँजी उन्नत तकनोलॉजी व मशीनों में लगानी होगी क्योंकि इसके ज़रिये ही श्रम की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है, यानी श्रम की पहले से कम मात्रा के ख़र्च के ज़रिये अधिक से अधिक मात्रा में मालों का उत्पादन किया जा सकता है। लेकिन जैसे-जैसे उद्योगों की समूची शाखाओं और समूची अर्थव्यवस्था में श्रमशक्ति की मात्रा उत्पादन के साधनों की मात्रा के सापेक्ष घटती जाती है और श्रमशक्ति पर पूँजी निवेश उत्पादन के साधनों पर पूँजी निवेश के सापेक्ष घटता जाता है, वैसे-वैसे हर माल में ख़र्च होने वाले मशीनों व कच्चे माल के मूल्य की मात्रा सापेक्षिक तौर पर बढ़ती जाती है जबकि नये मूल्य की मात्रा यानी नये जीवित श्रम द्वारा पैदा मूल्य की मात्रा घटती जाती है। यही नया मूल्य पूँजीपति और मज़दूर के बीच मुनाफ़े और मज़दूरी के रूप में बँटता है। नतीजा यह होता है कि पूँजीपति के द्वारा लगायी गयी पूँजी के मुनाफ़े की औसत दर में घटने की प्रवृत्ति प्रकट होती है।

वहीं नये मूल्य के मुनाफ़े और मज़दूरी में बँटने के अनुपात को लेकर पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग में भी एक संघर्ष जारी रहता है जो मज़दूर वर्ग के मज़दूरी को बढ़ाने, कार्यदिवस को कम करने आदि के संघर्षों में प्रकट होता है। इसलिए भी पूँजीपति मज़दूर वर्ग की मोलभाव की क्षमता को कम करने के लिए अधिक से अधिक उन्नत तकनोलॉजी व मशीनों का इस्तेमाल कर मज़दूरों की उत्पादकता को बढ़ाने और उनकी संख्या को घटाने का प्रयास करते हैं।

नतीजतन, पूँजीवादी व्यवस्था की आन्तरिक गति के कारण ही पूँजी-सघनता में, यानी पूँजी के आवयविक संघटन में बढ़ोत्तरी होती है, यानी सापेक्षिक रूप से मशीनों व तकनोलॉजी पर निवेश श्रमशक्ति पर निवेश के मुकाबले बढ़ता जाता है और इसके बढ़ने की दर अन्तत: बेशी मूल्य की बढ़ोत्तरी की दर से आगे निकलती ही है क्योंकि बेशी मूल्य की दर को बढ़ाने की एक सीमा होती है; यानी मज़दूरी को शून्य के बराबर नहीं किया जा सकता है और इसलिए आवश्यक श्रमकाल को भी शून्य के बराबर नहीं किया जा सकता है। साथ ही, मज़दूर के कार्यदिवस की लम्बाई को बढ़ाने की भी एक भौतिक सीमा और एक सामाजिक सीमा होती है। ऐसे में, अन्तत: मुनाफ़े की औसत दर गिरती है और पूँजीवादी संकट को जन्म देती है। यही निवेश की दर में गिरावट लाता है और पूँजीवादी समाज में बेरोज़गारी को बढ़ाता है, और साथ ही व्यापक मेहनतकश आबादी की औसत आय में गिरावट लाता है और नतीजतन कुल प्रभावी माँग में भी कमी लाता है।

लेकिन अगर मेहनतकश वर्गों की प्रभावी माँग में बढ़ोत्तरी हो भी जाये, तो भी मज़दूर अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य के माल ही ख़रीद सकता है, उससे ज़्यादा नहीं, और उसकी मज़दूरी पूँजीपति द्वारा किये गये निवेश का ही एक हिस्सा व उसी का प्रकार्य है। पूँजीपति का मुनाफ़ा जिस शुद्ध उत्पाद के मूल्य में निहित होता है, यानी वह उत्पाद जो ख़र्च होने वाले उत्पादन के साधनों व ख़र्च होने वाले मज़दूरी-उत्पादों (जो श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन में लगते हैं) के ऊपर बचता है, उसके लिए प्रभावी माँग मज़दूर वर्ग के बीच से नहीं पैदा होती है। ऐसे में, असली प्रभावी माँग जो माल के मूल्य के वास्तवीकरण, यानी, बिककर फिर से उकसे मुद्रा-रूप में आने की समस्या का समाधान कर सकती है, वह पूँजीपति वर्ग के बीच से पैदा होती है, न कि मज़दूर वर्ग के बीच से। पूँजीपति दो प्रकार की ख़रीदारी करते हैं: उपभोग और ऐय्याशी के साधनों की और उत्पादन की साधनों की। यदि मुनाफ़े की औसत दर गिरती है, तो पूँजीपति इन दोनों की ख़रीदों को कम कर देते हैं और यही बाज़ार में प्रभावी माँग के वास्तविक संकट को पैदा करता है। दूसरे शब्दों में, संकट के दौर में उत्पादन के पैमाने का विस्तार नहीं होता और नतीजतन पूँजीपति वर्ग के बीच से वह प्रभावी माँग नहीं पैदा होती जो कि शुद्ध उत्पाद के मूल्य का वास्तवीकरण कर सके और लाभप्रदता के संकट की ही एक अभिव्यक्ति के रूप में हमारे सामने मालों के न बिकने यानी उनके वास्तवीकरण न होने की समस्या भी प्रकट होती है।

माकपा, भाकपा, भाकपा (माले) आदि संशोधनवादी पार्टियों के सुधारवादी अर्थशास्त्री यह बुनियादी बात क्यों नहीं समझ पाते हैं? इसलिए क्योंकि वे नहीं समझ पाते कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति यानी जनता के उपभोग को बढ़ाने के लिए नहीं होता है, बल्कि मुनाफ़े के लिए होता है। अपने आप में, पूँजीवादी समाज में पहले से दी हुई कोई प्रभावी माँग नहीं होती है, बल्कि प्रभावी माँग स्वयं पूँजी के संचय और लाभप्रदता की गति पर निर्भर करती है। उनका शेखचिल्ली का सपना है कि सरकार घाटा ख़र्च कर, यानी नोट छापकर अगर जनता की जेबों में पहुँचा दे तो जनता की क्रय क्षमता बढ़ जायेगी, फिर उसकी प्रभावी माँग बढ़ जायेगी और फिर पूँजीपतियों की निवेश करने की इच्छा जाग जायेगी, मानो वे समाज के उपभोग की आवश्यकताओं को पूरा करने की समाज-सेवा करने को तत्पर बैठे थे! लेकिन अफ़सोस कि उनका सपना एक वहम पर टिका हुआ है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन उपभोग के लिए होता है, जबकि सच्चाई यह है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन मुनाफ़े के लिए होता है।

क्या इसका यह अर्थ है कि क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग शिक्षा,

(पेज 16 पर जारी)

केन्द्रीय बजट 2025-26 : मज़दूरों, ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यवर्ग की क़ीमत पर अमीरों को राहत और पूँजीपतियों और धन्नासेठों को लूटने की पूरी छूट का बेशर्म दस्तावेज़

(पेज 15 से आगे)

स्वास्थ्य, आवास, सामाजिक सुरक्षा आदि पर ख़र्च बढ़ाने की माँग पूँजीपति वर्ग और उसकी सरकार से नहीं करता है? नहीं, ऐसा नहीं है। ज़ाहिर है कि क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग भी सरकार द्वारा सामाजिक ख़र्च में बढ़ोत्तरी, यानी सभी के लिए निशुल्क एवं समान शिक्षा व चिकित्सा, सरकारी आवास, सार्विक बीमा, बेरोज़गारी भत्ता, अधिक न्यूनतम मज़दूरी, आदि की माँग करता है। लेकिन उसे यह मुग़ालता नहीं होता है कि अगर सरकार वाकई यह करने लग जाय तो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को संकट से बचाया जा सकता है और फिर उसका अस्तित्व हमेशा के लिए बना रह सकता है। वह ये माँगें इसलिए उठाता है क्योंकि यह उसका हक़ है; सरकार की आमदनी भी मुनाफ़े या वेतन पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों से ही होती है और इस आमदनी के स्रोत में भी मेहनतकश वर्ग का श्रम ही होता है और इसलिए वह सरकार द्वारा इन सुविधाओं को हासिल करने का हक़दार होता है।

इसलिए हमें इन माँगों के लिए जुझारू तरीक़े से लड़ना ही होगा। लेकिन हम संशोधनवादियों व सुधारवादियों के समान इस भ्रम का शिकार नहीं होते और न ही यह भ्रम जनता के बीच फैलाते हैं कि यदि पूँजीवादी व्यवस्था के सरकार इन माँगों को पूरा कर दे तो एक ऐसा सुधरा हुआ मानवीय चेहरे वाला प्यारा-सा पूँजीवाद सम्भव है जो कभी संकट में नहीं फँसेगा और और श्रम और पूँजी के बीच पवित्र समझौते के ज़रिये हमेशा जीवित रहेगा। ऐसा समझौता पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता आम तौर पर केवल तेज़ी के दौर में करती है और वह भी कुछ समय के ही लिए और हमारे देश में और पूरी दुनिया में पूँजीवाद एक दीर्घकालिक मन्दी से गुज़र रहा है, जिसके दौरान ऐसे किसी पूँजी-श्रम समझौते की उम्मीद के भरोसे बैठे रहना मूर्खतापूर्ण ही नहीं बल्कि सर्वहारा वर्ग के लिए नुकसानदेह है। पूँजीवाद के कल्याण की ऐसी कामना करने का काम हमें माकपा, भाकपा व भाकपा (माले) जैसे संशोधनवादियों व कींसवादी नीम हक़ीमों पर छोड़ देना चाहिए।

साथ ही, संशोधनवादियों को यह भी नहीं समझ में आता है कि विशेष तौर पर आर्थिक संकट के दौर में पूँजीवादी सरकार इन कल्याणकारी नीतियों को लागू कर जनता की औसत आय को बढ़ाने का काम क्यों नहीं करती है। *इसकी वजह साफ़ है: यदि मेहनतकश जनता की औसत आय बढ़ती है, यादि उसे सरकार द्वारा बेरोज़गारी भत्ता, सामाजिक सुरक्षा आदि के प्रावधान हासिल होते हैं, तो वह पूँजीपतियों के समक्ष कम गरज़मन्द होती है और वह अधिक मज़दूरी की माँग करती है। यह औसत मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा करता है और पहले से संकट से बिलबिलाये हुए पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की औसत दर को और भी ज़्यादा गिराता है।* इसको एक उदाहरण से समझते हैं। मान लें, अगर किसी बेरोज़गार मज़दूर को 6-8 हज़ार रुपये महीने बेरोज़गारी भत्ता मिल रहा है, निशुल्क शिक्षा व चिकित्सा मिल रही है, सरकारी आवास की सुविधा मिल रही है, तो वह 10-11 हज़ार रुपये की मज़दूरी पर 10-12 घण्टे खटने का विकल्प नहीं चुनेगा। वह बेहतर रोज़गार के विकल्प का इन्तज़ार करेगा। ऐसे में, आम तौर पर सामाजिक पैमाने पर मज़दूरों-मेहनतकशों की मोलभाव की क्षमता बढ़ती है और पूँजीपतियों की मोलभाव की क्षमता घटती है।

यही वजह है कि विशेष तौर पर मन्दी के दौरों में दुनिया के हर देश में पूँजीपति वर्ग अपनी सरकारों पर दबाव बनाता है कि वह बची-खुची सामाजिक कल्याण की नीतियों को भी समाप्त कर दे। विशेष तौर पर आर्थिक संकट के दौर में तो पूँजीपति वर्ग मज़दूरों की औसत मज़दूरी को कम-से-कम रखने और उनके काम के घण्टों व श्रम की सघनता को अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयास करता है। ऐसे में, वह ऐसी किसी भी पूँजीवादी पार्टी को अपनी पूँजी की शक्ति का समर्थन नहीं देगा, जो सरकार में आने पर किसी किस्म का कल्याणवाद करना चाहती हो। यहाँ तक कि वह कल्याणवाद का दिखावा करने वाली किसी पार्टी को भी चन्दे नहीं देता है। यही वजह है कि 2010-11 में भारतीय अर्थव्यवस्था में मन्दी के गहराने के बाद से पूँजीपति वर्ग का समर्थन एकमुश्त फ़ासीवादी भाजपा और मोदी-शाह की ओर स्थानान्तरित हुआ है।

माकपा, भाकपा, भाकपा (माले) के संशोधनवादियों और सुधारवादियों को यह बात इसलिए नहीं समझ आती है क्योंकि उनकी सोच एक सुधरे हुए पूँजीवाद से आगे नहीं जाती जो पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के बीच के समझौते पर आधारित हो। वजह यह है कि उन्हें पूँजीवादी उत्पादन पद्धति और अर्थव्यवस्था की गतिकी के बारे में कोई समझ ही नहीं होती है। उनका लक्ष्य पूँजीवाद की हिफ़ाज़त होती है और उनका सपना सुधरे हुए पूँजीवाद का शेखचिल्ली का सपना होता है।

इसके विपरीत क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग अधिक मज़दूरी और सरकार द्वारा बढ़े हुए सामाजिक ख़र्च की माँग उठाते हुए यह मुग़ालता नहीं पालता है कि इसके ज़रिये पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर ही इन माँगों को स्थायी रूप में पूरा कर मज़दूर वर्ग पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर ही एक इज़्ज़त और आसूदगी की ज़िन्दगी, एक इन्सानी ज़िन्दगी हासिल कर लेगा। वजह यह कि संशोधनवादियों के विपरीत वह पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग के असली चरित्र को अपने जीवन के अनुभव से पहचानता है और उसके सुधर जाने या उसका हृदय-परिवर्तन हो जाने की मूर्खतापूर्ण उम्मीद नहीं पालता है। वह फिर भी इन माँगों के लिए लड़ता है क्योंकि ये उसका वाजिब हक़ है। वह कहता है : 'हमें ये हक़ दो, वरना गद्दी छोड़ दो।' वह अपने संघर्षों के ज़रिये मौजूद पूँजीवादी व्यवस्था को उसके सीमान्तों तक पहुँचाता है, उस बिन्दु तक पहुँचाता है, जहाँ उसका अस्तित्व सुगम तौर पर बना रहना असम्भव हो जाता है। इसलिए ठीक इन्हीं माँगों पर क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग के संघर्ष का रवैया बिल्कुल अलग होता है, यानी क्रान्तिकारी होता है, सुधारवादी नहीं।

महँगाई के मूल कारण और 2025-26 बजट

महँगाई का सबसे प्रमुख कारण क्या है? हम ऊपर विस्तृत चर्चा कर चुके हैं कि इस समय हमारे देश में महँगाई का सबसे बड़ा तात्कालिक विशिष्ट कारण है मोदी सरकार द्वारा पिछले 10 वर्षों में आम मेहनतकश जनता पर बढ़ाया गया अप्रत्यक्ष करों का बोझ। हम ऊपर यह चर्चा भी कर चुके हैं कि किस प्रकार मोदी सरकार सरकारी खज़ाने में पूँजीपतियों को दी जाने वाली छूटों से होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए करों का बोझ जनता पर बढ़ाती जा रही है। हमने इसके ठोस आँकड़े भी ऊपर पेश किये हैं।

क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग ने दुनिया भर में लम्बे समय से अप्रत्यक्ष करों को पूर्ण रूप से समाप्त करने और प्रगतिशील समृद्धि टैक्स लगाने की माँग को बार-बार रखा है। इन माँगों को लेकर सर्वहारा वर्ग द्वारा किये गये संघर्षों का ही नतीजा था कि दुनिया के अधिकांश उन्नत पूँजीवादी देशों में पूँजीपति वर्ग और उसकी सरकारों को अप्रत्यक्ष करों को कम करने और प्रत्यक्ष करों को अपेक्षाकृत बढ़ाने, यानी कारपोरेट टैक्स और प्रगतिशील आयकर को बढ़ाने, का काम करना पड़ा था। वैश्विक मन्दी के दौर में अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, जापान आदि में भी अप्रत्यक्ष करों को धीरे-धीरे बढ़ाया जा रहा है और प्रत्यक्ष करों को धीरे-धीरे घटाया जा रहा है। नये अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने अमेरिका के उच्च मध्यवर्ग और धनी वर्गों से वायदा किया है कि वह आयकर को धीरे-धीरे समाप्त कर देंगे। साथ ही, कारपोरेट टैक्स को भी नगण्य बना देंगे। लेकिन आज भी इन देशों में अप्रत्यक्ष करों से होने वाला सरकारी राजस्व इन देशों की सरकारों के कुल कर राजस्व का भारत की सरकार के कर राजस्व की तुलना में कहीं ज़्यादा बड़ा हिस्सा है।

इस तात्कालिक कारण के अलावा, एक पूँजीवादी व्यवस्था में महँगाई के स्तर में उतार-चढ़ाव और कभी भी भयंकर महँगाई का पैदा होना आम बात है। वजह यह है कि यह व्यवस्था योजनाबद्ध ढंग से सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन, विनिमय और वितरण नहीं करती है। यहाँ इन चीज़ों को नियन्त्रित और विनियमित करने वाला कारक होता है मुनाफ़े की औसत दर की गति, जिसमें आने वाला बदलाव समाज में श्रम के उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में विभाजन को बदलता रहता है। पूँजीवाद हर माल के मूल्य को श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करके घटाता है। लेकिन कीमतों का आम स्तर वास्तव में केवल इससे नहीं तय होता है। एक ओर तात्कालिक तौर पर माँग और आपूर्ति के कारक उसे निर्धारित करते हैं, जो कि स्वयं पूर्वप्रदत्त नहीं होते, बल्कि पूँजी संचय की गति और संरचना से निर्धारित होते हैं। वहीं दूसरी ओर, व्यापक मेहनतकश जनता की औसत आय का स्तर भी इसमें एक अहम भूमिका निभाता है। अगर नये पैदा होने वाले मूल्य में आम मेहनतकश आबादी, विशेष तौर पर, मज़दूर वर्ग का हिस्सा घटता है, तो मालों का मूल्य कम होने के बावजूद उसके लिए महँगाई बढ़ सकती है। कीमतों के आम स्तर का पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूँजी संचय की गति के उतार-चढ़ाव के साथ अराजक तरीके से ऊपर-नीचे होने पूँजीवादी व्यवस्था की आम प्रवृत्ति का हिस्सा है और इससे निर्णायक तौर पर निजात समाजवादी व्यवस्था में ही मिल सकती है क्योंकि एक समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन, विनिमय और वितरण समाज की आवश्यकताओं के एक वैज्ञानिक आकलन के आधार पर योजनाबद्ध तरीक़े से होता है। वहाँ अनिश्चितता और अराजकता का तत्व प्रधान नहीं होता है, बल्कि योजना का तत्व प्रधान होता है। इसलिए समय-समय पर पैदा होने वाली महँगाई से स्थायी तौर पर मुक्ति एक मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था दे ही नहीं सकती है। यह केवल समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव होगा।

लेकिन पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता व सरकारें समय-समय पर महँगाई को अप्रत्यक्ष करों को बढ़ाकर भी बढ़ाती हैं, जो कि पूँजीवादी व्यवस्था की ढाँचागत गति से इतर एक खुली और नंगी लूट होती है। मोदी सरकार के 10 वर्षों में तमाम अन्यायपूर्ण अप्रत्यक्ष करों द्वारा इस नंगी लूट में ऐसी बढ़ोत्तरी हुई है, जिसकी कोई मिसाल आज़ाद भारत के इतिहास में नहीं है। मौजूदा बजट 2025-26 इसी लूट को बढ़ाने और क़ायम रखने का काम करता है। इसके ख़िलाफ़ जनता के बीच प्रचार करना, उसे जागृत, गोलबन्द और एकजुट करना आज एक क्रान्तिकारी जनान्दोलन खड़ा करने का अहम मसला है। लेकिन सबसे पहले क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को इस सवाल को गहराई से समझना होगा कि यह लूट मोदी सरकार किस प्रकार कर रही है।

अन्त में...

अन्त में यह कहा जा सकता है कि मौजूदा बजट में मोदी सरकार ने पूँजी को लूट की खुली छूट देने, जनता के संसाधनों को निजी हाथों में सौंपने, आम मेहनतकश आबादी पर अप्रत्यक्ष करों के बोझ को बढ़ाने, धनी और उच्च मध्य वर्गों को करों से राहत देने की अपनी आक्रामक जनविरोधी और पूँजीपरस्त नीतियों को पहले की ही तरह जारी रखा है। जिस प्रकार कुछ समय पहले आन्ध्रप्रदेश को चन्द्रबाबू नायडू के समर्थन को बनाये रखने के लिए मोदी सरकार ने तमाम छूटें, रियायतें, सहूलियतें, अमरावती में राजधानी निर्माण के लिए विशेष पैकेज दिया था, उसी प्रकार इस बार नीतीश कुमार के समर्थन को जारी रखने के लिए बिहार को पश्चिमी कोशी कैनाल योजना, आईआईटी पटना के विकास व विस्तार, मखाना बोर्ड के निर्माण आदि के नाम पर विशेष पैकेज दिये गये हैं। नायडू और नीतीश ने पहले ही बता दिया था कि मोदी सरकार को समर्थन के पीछे उनका मकसद अपने-अपने राज्यों के लिए विशेष सहायता व पैकेज हासिल करना है। इतना करने में मोदी सरकार का कुछ जाता भी नहीं है। उल्टे इस बात की उम्मीद की जा सकती है कि भविष्य में इसका भी ज़्यादा फ़ायदा इन राज्यों में मोदी और भाजपा उठायेगी। इसके अतिरिक्त, बजट 2025-26 आम मेहनतकश जनता की लूट को और भी अधिक तीव्र और सघन बनाने का दस्तावेज़ है, जो मोदी सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों और कारपोरेट घरानों की उसकी चाकरी को साफ़ कर देता है।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 23

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

खण्ड-2

● अभिनव

सम्पादकीय टिप्पणी

साथियो,

सितम्बर 2024 में 'क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला' के तहत श्रृंखला में प्रकाशित हो रही पुस्तक 'मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' का पहला खण्ड 'मज़दूर बिगुल' में पूरा हो चुका था। इस बार से हम इस पुस्तक के दूसरे खण्ड का प्रकाशन शुरू कर रहे हैं। यह पुस्तक निकटता से मार्क्स की 'पूँजी' के खण्डों का अनुसरण करती है, उसमें पेश पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के आम नियमों की व्याख्या को अधिकतम सम्भव सरलीकृत कर मज़दूर साथियों, छात्र-युवा साथियों और कम्युनिस्ट राजनीतिक कार्यकर्ताओं के अध्ययन हेतु प्रस्तुत करती है, मार्क्स के क्रान्तिकारी वैज्ञानिक राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के कुछ तत्वों को आज के पूँजीवाद के अनुसार विस्तारित और विकसित करती है। इस पुस्तक के पहले खण्ड के अब तक 'मज़दूर बिगुल' में प्रकाशित अध्यायों ने मार्क्स की 'पूँजी' के पहले खण्ड की बुनियादी शिक्षाओं को आपके सामने पेश किया है। पुस्तक का पहला खण्ड जल्द ही एक जिल्द में प्रकाशित होकर आपके हाथों में होगा।

इस अंक से हम इस पुस्तक के दूसरे खण्ड के अध्यायों को श्रृंखला रूप में प्रकाशित करने की शुरुआत कर रहे हैं। हम एक बार फिर से पाठकों को याद दिलाना चाहेंगे कि मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र एक विज्ञान है – सामाजिक उत्पादन के नियमों को उद्घाटित करने वाला विज्ञान। किसी भी विज्ञान के समान इसके सरलीकरण की एक सीमा होती है, जिसके बाद सरलीकरण करना वैज्ञानिक शिक्षाओं की सटीकता के साथ समझौते की ओर ले जाता है। नतीजतन, विज्ञान को समझने के लिए श्रमसाध्य प्रयासों, धैर्य और हठ की आवश्यकता होती है। मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के बारे में भी यह बात लागू होती है। हमारा सुझाव होगा कि इसे 'बिगुल मज़दूर अध्ययन मण्डल' में सामूहिक तौर पर पढ़ें, व्यक्तिगत तौर पर भी पढ़ें और मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की जानकारी रखने वाले सर्वहारा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के साथ पढ़ें, इस पर कक्षाओं को आयोजन करें। इस प्रक्रिया के ज़रिये इस विज्ञान को हम बेहतर तरीक़े से समझ सकते हैं।

साथ ही इस बात की याददिहानी भी इस पुस्तक के दूसरे खण्ड के श्रृंखलाबद्ध प्रकाशन की शुरुआत के साथ प्रासंगिक होगी कि हमारे लिए मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के विज्ञान का अध्ययन कोई किताबी क़वायद नहीं है। यह सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षण का एक अंग है। हम जिस व्यवस्था के विरुद्ध लड़ रहे हैं, उसे समझे बग़ैर, अपने शोषण के रहस्य को समझे बग़ैर हम पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध प्रभावी संघर्ष संगठित नहीं कर सकते हैं। साथ ही, मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्त हमें केवल पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच के सम्बन्धों की ही गहरी समझदारी नहीं देते हैं, बल्कि पूँजीपति वर्ग के आपसी सम्बन्धों, पूँजीपति वर्ग और मध्यवर्ती वर्गों (मसलन, शहरी व ग्रामीण टुटपुँजिया वर्ग) के बीच के सम्बन्धों और सर्वहारा वर्ग और इन मध्यवर्ती वर्गों के बीच के सम्बन्धों की भी सुसंगत समझदारी देते हैं। संक्षेप में, वे पूँजीवादी समाज में मौजूद सभी वर्गों के बीच मौजूद सम्बन्धों व उनके आपसी आन्तरिक सम्बन्धों के बारे में एक वैज्ञानिक समझदारी देते हैं। जैसा कि लेनिन ने कहा था, यदि मज़दूर वर्ग को एक सामाजिक वर्ग (अपने आप में अस्तित्वमान वर्ग) एक राजनीतिक वर्ग (अपने ऐतिहासिक उद्देश्यों के लिए सचेतन रूप से सक्रिय वर्ग, यानी अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के लिए सक्रिय वर्ग) में, यानी सर्वहारा वर्ग में तब्दील होना है, तो उसे केवल अपने और पूँजीपति वर्ग के बीच के सम्बन्धों को ही नहीं, बल्कि समाज में मौजूद सभी वर्गों के बीच और उनके आपसी सम्बन्धों को समझना होगा। केवल तभी वह *जनता के विभिन्न वर्गों* (जो पूँजीवादी व्यवस्था में किसी न किसी रूप में शोषित, दमित व उत्पीड़ित हैं) को अपने क्रान्तिकारी नेतृत्व में साथ लेकर एक पूँजीवाद-विरोधी क्रान्तिकारी कैम्प या वर्गों के संयुक्त मोर्चे को निर्मित कर सकता है, केवल तभी वह जनता के तमाम वर्गों के बीच प्रभुत्वशाली पूँजीवादी विचारधारा के वर्चस्व को तोड़कर अपने विचारधारात्मक व राजनीतिक वर्चस्व को निर्मित कर सकता है और केवल तभी वह पूँजीवादी राज्यसत्ता के ध्वंस और सर्वहारा सत्ता के मातहत एक समाजवादी व्यवस्था को खड़ा कर सकता है और कम्युनिस्ट समाज की ओर आगे बढ़ने के क्रान्तिकारी संघर्ष को संगठित कर सकता है। इन वर्गों के बीच और इनके आपसी सम्बन्धों का सारतत्व हम मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की सघन और व्यापक पढ़ाई के साथ ही समझ सकते हैं। इस पुस्तक का लक्ष्य यही है कि ऐसी समझदारी को निर्मित करने में मज़दूर साथियों, छात्र-युवा साथियों और सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को सक्षम बनाया जाय।

जिस प्रकार पुस्तक के पहले खण्ड में मार्क्स की 'पूँजी' के पहले खण्ड में पेश बुनियादी शिक्षाओं को अधिकतम सम्भव सरलीकृत करके और उसके कुछ तत्वों को समकालीन पूँजीवाद में मार्क्स के समय से आज के दौर तक आये कुछ परिवर्तनों की रोशनी में विस्तारित और विकसित करते हुए पेश किया था, उसी प्रकार पुस्तक का दूसरा खण्ड मार्क्स की 'पूँजी' के दूसरे खण्ड की बुनियादी खोजों को आपके सम्मुख प्रस्तुत करेगा। हम उम्मीद करते हैं कि श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रकाशित हो रही इस पुस्तक के पहले खण्ड को 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों ने जैसी उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया दी है, वह दूसरे खण्ड के श्रृंखलाबद्ध प्रकाशन के दौरान भी जारी रहेगी।

– सम्पादक

प्रस्तावना

इस पुस्तक के पहले खण्ड में हमने मूलत: पूँजीवादी समाज में उत्पादन की प्रक्रिया को समझा था। इस दूसरे खण्ड में, जो आपके हाथों में है, हम पूँजी के संचरण की प्रक्रिया को विस्तार से और गहराई से समझेंगे। यह क्रम एकदम तार्किक है। क्योंकि पूँजी के रूप में माल किस प्रकार संचरित बाज़ार में होते हैं, यानी उनकी ख़रीद-बिकवाली की प्रक्रिया किस प्रकार चलती है, यह निर्धारित स्वयं उत्पादन की प्रक्रिया से ही होता है। वजह यह कि हर प्रकार की आय का स्रोत वास्तव में उत्पादन में होता है। इसलिए मार्क्स भी 'पूँजी' के पहले खण्ड में पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया को तार-तार करके समझाते हैं, माल को पूँजीवादी समाज की कोशिका के रूप में सामने लाते हैं, उसकी प्रकृति को अनावृत्त करते हैं, मूल्य और बेशी मूल्य की श्रेणियों, बेशी मूल्य के पूँजी रूपान्तरण, विस्तारित पूँजीवादी उत्पादन और पूँजी संचय के आम नियमों को स्पष्ट करते हैं। इस विश्लेषण के केन्द्र में उत्पादन का स्थान, यानी कारखाना या वर्कशॉप है, जहाँ मज़दूर सामूहिक तौर पर उत्पादन करते हैं। इस पहले खण्ड में मार्क्स, मूलत: और मुख्यत:, मज़दूर और पूँजीपति के बीच के रिश्ते का विश्लेषण करते हैं, पूँजीपति के मुनाफ़े के असली स्रोत को उजागर करते हैं, पूँजीवादी उत्पादन की आम प्रवृत्ति यानी पूँजी के संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन तथा पूँजी के संघनन और संकेन्द्रण के सामान्य नियम को प्रदर्शित करते हैं।

लेकिन 'पूँजी' के दूसरे खण्ड में मार्क्स उत्पादन के स्थान नहीं, बल्कि संचरण के स्थान, यानी बाज़ार पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस खण्ड में वह पूँजी के स्वामी के रूप में पूँजीपति और प्रत्यक्ष उत्पादक के रूप में मज़दूर के बीच के रिश्ते पर नहीं, बल्कि पूँजीपतियों के आपसी रिश्तों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, जिसमें मज़दूर प्रकट भी होता है, तो उपभोग की वस्तुओं, यानी मज़दूरी-उत्पादों, के ख़रीदार के रूप में। यहाँ वह मूल्य के उत्पादन पर नहीं बल्कि मूल्य के वास्तवीकरण पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। चूँकि हम मार्क्स के आर्थिक चिन्तन के तार्किक क्रम का ही निकटता के साथ अनुसरण कर रहे हैं, इसलिए इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में हम भी पूँजी के संचरण की प्रक्रिया पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे और समझने का प्रयास करेंगे कि पूँजीवादी व्यवस्था जैसी अराजक व्यवस्था के पुनरुत्पादन की क्या स्थितियाँ और शर्तें होती हैं।

इसी क्रम में यह बात भी स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि 'पूँजी' के दूसरे खण्ड के एक छोटे हिस्से को ही मार्क्स अन्तिम रूप दे पाये थे और उसे भी मार्क्स की बाद की खोजों के अनुसार एंगेल्स को सम्पादित करना पड़ा था। इस दूसरे खण्ड में मौजूद मार्क्स का शेष लेखन असम्पादित और बिखरी हुई पाण्डुलिपियों के रूप में मौजूद था, जिसे एंगेल्स ने एक तार्किक क्रम में सँजोया और सम्पादित किया। इसका यह अर्थ नहीं है कि एंगेल्स ने इस लेखन में कुछ जोड़ा या घटाया। एंगेल्स ने उसे एक सम्पूर्ण पुस्तक का रूप दिया और मार्क्स के साथ हमेशा उनके सहचिन्तक की भूमिका निभाने के कारण उनके पास ही यह क्षमता थी कि वह यह जटिल काम कर सकते थे। एंगेल्स स्वयं इसके बारे लिखते हैं:

> "प्रकाशन के लिए 'पूँजी' के दूसरे खण्ड को तैयार करना कोई आसान काम नहीं था, और विशेष तौर पर एक ऐसे रूप में कि वह न सिर्फ़ अधिकतम सम्भव पूर्णता के साथ एक समेकित रचना प्रतीत हो, बल्कि अपने लेखक की विशिष्ट रचना भी प्रतीत हो, न कि उसके सम्पादक की। पाण्डुलिपियों के संस्करणों की भारी संख्या के कारण, जिनका बड़ा हिस्सा अपूर्ण था, यह काम और भी मुश्किल हो गया था। इनमें से केवल एक पाण्डुलिपि, पाण्डुलिपि IV, ही प्रकाशन के लिए पूरी तरह तैयार थी, हालाँकि यहाँ भी बाद में तैयार मसौदों के कारण इनका बड़ा हिस्सा पुराना पड़ गया था। सामग्री का प्रमुख हिस्सा, मुख्य रूप से, अगर अन्तर्वस्तु के मामले में पूरी तरह तैयार था भी तो यह भाषा के मामले में तैयार नहीं था। यह उन मुहावरों में लिखा गया था जिनका मार्क्स अपने सारांशों में करते थे : एक बेपरवाह शैली, बोल-चाल में इस्तेमाल होने वाले और अक्सर अशिष्ट मज़ाकिया अभिव्यक्तियाँ और प्रचलित उक्तियाँ, अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी तकनीकी शब्द, कई बार पूरे के पूरे वाक्य और अक्सर कई पन्ने अंग्रेज़ी में। यह विचारों की उस तात्कालिक रूप में अभिव्यक्ति थी जिस रूप में वे लेखक के मस्तिष्क में जन्मे थे। विस्तार में विकसित किये गये भागों के साथ-साथ, उतने ही महत्वपूर्ण अन्य भाग भी थे, जिनकी केवल एक रूपरेखा ही विकसित की गयी थी। तथ्यात्मक चित्रण के लिए सामग्री एकत्र तो की गयी थी, लेकिन उन्हें विकसित करना तो दूर, मुश्किल से ही व्यवस्थित किया गया था। किसी अध्याय के

(पेज 18 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 17 से आगे)

अन्त में, अगले अध्याय पर जाने की जल्दबाज़ी में, मार्क्स ने अक्सर कुछ असम्बद्ध वाक्य छोड़ दिये हैं, जो अभी अपूर्ण विश्लेषण के लिए एक मार्ग-निर्देशक के रूप में काम कर रहे हैं। और अन्ततः, वह कुख्यात लिखावट जिसे कई बार स्वयं उसका लेखक भी पढ़ पाने में असफल रहता था।" (मार्क्स, कार्ल. 1992. *पूँजी,* खण्ड-2, एंगेल्स द्वारा लिखित 'प्रस्तावना', अंग्रेज़ी संस्करण, पेंगुइन, पृ. 83, *अनुवाद हमारा*)

लेकिन इसके ठीक बाद एंगेल्स विनम्रतापूर्वक बताते हैं कि ये सारी मुश्किलें वस्तुत: केवल सम्पादन से जुड़ी थीं, लेखन से नहीं और दूसरे खण्ड में प्रस्तुत सामग्री पूर्णत: मार्क्स द्वारा चिन्तित और लिखित है:

> "मैंने अधिकतम सम्भव शाब्दिक अर्थ में पाण्डुलिपियों को ही प्रस्तुत करने, शैली में वे बदलाव करने जो मार्क्स ने स्वयं किये होते, और उन जगहों पर कोष्ठकों में कुछ व्याख्याएँ पेश करने और लेखांशों को जोड़ने तक अपने आपको सीमित रखा है, जिन जगहों पर यह एकदम अपरिहार्य था और अर्थ को स्पष्ट करने के लिए ज़रूरी था। जहाँ कहीं भी किसी वाक्य के अर्थ को लेकर कोई हल्का सा भी सन्देह था, वहाँ मैंने उन्हें शब्दश: प्रकाशित करने का चुनाव किया है। मेरी ओर से जो भी पुनर्रचना और प्रक्षेप किये गये हैं वे कुल मिलाकर छपे हुए दस पन्नों से ज़्यादा नहीं है, पूर्ण रूप से औपचारिक चरित्र रखते हैं।" (*वही,* पृ. 83, *अनुवाद हमारा*)

बाद में हुए शोध ने बिना शक़ इस बात को साबित किया है कि 'पूँजी' के खण्ड 2 और खण्ड 3 के सम्पादन में एंगेल्स ने शानदार काम किया था और अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया था। एंगेल्स ने 1883 में मार्क्स की मृत्यु के बाद अपने बचे जीवन का बड़ा हिस्सा इसी काम को समर्पित किया और मार्क्स के निकटतम कॉमरेड और महान सहचिन्तक की भूमिका सराहनीय ढंग से निभायी। यह भूलना नहीं चाहिए कि एंगेल्स स्वयं एक महान प्रतिभाशाली चिन्तक थे और यदि 'पूँजी' की असम्पादित पाण्डुलिपियों के सम्पादन और प्रकाशन का महान ऐतिहासिक कार्यभार उनके कन्धों पर न आ पड़ा होता, तो वे स्वयं कई और महान रचनाओं का लेखन करते। लेकिन मार्क्स की इन पाण्डुलिपियों के सम्पादन व प्रकाशन के अलावा बचने वाले समय में भी उन्होंने अधिक हिस्सा सर्वहारा वर्ग के क्रान्ति के विज्ञान यानी मार्क्सवाद के उसूलों पर बुर्जुआ और पेटी-बुर्जुआ चिन्तकों की ओर से होने वाले हमलों का जवाब देने और मज़दूर वर्ग के समक्ष वैज्ञानिक समाजवाद, द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के उसूलों को अधिकतम सम्भव सरल रूप में पेश करने में ख़र्च किया।

'पूँजी' के दूसरे खण्ड के बारे में कुछ बुनियादी बातें

चूँकि मौजूदा पुस्तक का दूसरा खण्ड मार्क्स की 'पूँजी' के दूसरे खण्ड में पेश बुनियादी खोजों व शिक्षाओं को ही अधिकतम सम्भव सरलीकृत रूप में आपके सामने पेश करेगा, इसलिए 'पूँजी' के दूसरे खण्ड के विषय में कुछ बातें पहले ही जान लेना उपयोगी होगा।

सबसे पहली बात, जिसका हमने ऊपर भी ज़िक्र किया है, वह यह है कि 'पूँजी' का दूसरा खण्ड कई मामलों में 'पूँजी' के पहले खण्ड से भिन्न है। इसे शुद्ध रूप से वैज्ञानिक महत्व रखने वाला खण्ड का जा सकता है। पहला खण्ड का भी पूर्णत: वैज्ञानिक महत्व ही रखता है। लेकिन दूसरे खण्ड का कोई उद्वेलनात्मक मूल्य सीधे तौर पर नहीं है। इसलिए एंगेल्स ने ही इसे शुद्ध रूप से वैज्ञानिक मूल्य रखने वाला खण्ड कहा था। यह मज़दूरों और पूँजीपतियों के बीच उत्पादन के सम्बन्धों का विश्लेषण नहीं करता। यह विश्लेषण मार्क्स पहले खण्ड में पेश कर चुके हैं। यह, मूलत: और मुख्यत:, पूँजीपतियों के आपसी सम्बन्धों की बात करता है। मज़दूर इस पूरी चर्चा में मज़दूरी-उत्पादों के ख़रीदार और श्रमशक्ति के विक्रेता के रूप में प्रकट होते हैं। यह मूल्यों और उपयोग-मूल्यों के संचरण की जटिल प्रक्रिया का गहरा विश्लेषण करता है और इसके ज़रिये इस बात की पड़ताल करता है कि वैयक्तिक और साथ ही सामाजिक स्तर पर पूँजी का संचरण और उसका पुनरुत्पादन किस प्रकार होता है। यानी, मुद्रा-पूँजी किस तरीक़े से निवेशित होती है, पहले वह माल-पूँजी में कैसे तब्दील होती है, फिर यह माल-पूँजी किस प्रकार से उत्पादन में लगकर उत्पादक-पूँजी में तब्दील होती है और उत्पादक-पूँजी के प्रकार्य के फलस्वरूप किस तरीके से उत्पादन के बाद वह फिर से नये रूप में माल-पूँजी में तब्दील होती है। सामाजिक स्तर पर किस प्रकार यह प्रकिया सम्पन्न होती है, मार्क्स इसका विश्लेषण करने के लिए समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को दो मोटे हिस्सों में विभाजित करते हैं: पहला, उत्पादन के साधनों का उत्पादन करने वाला विभाग, या विभाग-1, और दूसरा, उपभोग के साधनों का उत्पादन करने वाला विभाग, या विभाग-2। विभाग-1 के भीतर, विभाग-2 के भीतर और विभाग-1 व विभाग-2 के बीच किस प्रकार पूँजी (निवेशित होने वाली मुद्रा, जो निवेश के साथ मुद्रा-पूँजी में तब्दील होती है) और आय (उपभोग पर ख़र्च होने वाली मुद्रा आमदनी) का प्रवाह होता है, किस प्रकार उनके पथ आपस में अन्तर्गुन्थित होते हैं, इसका मार्क्स विस्तार में विश्लेषण करते हैं और इसके ज़रिये उपयोग-मूल्य व मूल्य के संचरण की दोहरी व अन्तर्गुन्थित गति को उजागर करते हैं। इस विश्लेषण के ज़रिये ही मार्क्स दिखला पाये कि पूँजीवाद जैसी अराजक व्यवस्था किन स्थितियों में अपने आपको सफलतापूर्वक (सुगमतापूर्वक नहीं!) पुनरुत्पादित कर पाती है और ठीक इसी के ज़रिये उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि किन स्थितियों में वह सफलतापूर्वक अपना पुनरुत्पादन नहीं पाती।

चूँकि इस दूसरे खण्ड में समूची पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजी के संचरण की प्रक्रिया का विश्लेषण है और यह उत्पादन के स्थान, यानी कारखाना, नहीं, बल्कि विनिमय और संचरण के स्थान, यानी बाज़ार पर केन्द्रित है, इसलिए इस खण्ड का विशिष्ट तौर पर और प्रत्यक्ष रूप में कोई उद्वेलनात्मक मूल्य नहीं नज़र आता। यही कारण है कि अपने प्रकाशन के बाद लगभग डेढ़-दो दशकों तक यह पूर्णत: उपेक्षित ही रहा। लेकिन इस दूसरे खण्ड को समझना मार्क्स की 'पूँजी' के तीनों खण्डों को समझने के लिए अनिवार्य है। 'पूँजी' के तीसरे खण्ड में मार्क्स उत्पादन और संचरण की प्रक्रियाओं को सम्पूर्णता में विश्लेषित ठीक इसलिए ही कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने दूसरे खण्ड में ही संचरण की प्रक्रिया की विशिष्टताओं का तार-तार कर गहरा अध्ययन किया। मार्क्स की 'पूँजी' की समूची परियोजना में इस दूसरे खण्ड के स्थान को समझने में दुनिया को समय लगा। एंगेल्स ही इसके कारणों को स्पष्ट कर देते हैं। प्योत्र लावरोव को 5 फ़रवरी 1884 को लिखे एक पत्र में वह लिखते हैं:

> "यद्यपि जिस चीज़ पर तुरन्त चर्चा की जा सकती है, वह है रूस में इसका अनुवाद प्रकाशित करने की सम्भावना। क्या आपको ऐसा लगता है कि ऐसा किया जा सकता है? यह *दूसरी किताब शुद्ध रूप से वैज्ञानिक है, और केवल पूँजीपति से पूँजीपति के सम्बन्धों पर विचार करती* है, लेकिन तीसरी वाली में ऐसे अंश होंगे जो मुझमें इस बात को लेकर सन्देह पैदा करते हैं कि जर्मनी में समाजवाद-विरोधी कानून के तहत उनका प्रकाशन होने की कोई सम्भावना भी है या नहीं।" (एंगेल्स का पत्र प्योत्र लावरोव को, 5 फ़रवरी, 1884, मार्क्स-एंगेल्स. 2010. *संग्रहीत रचनाएँ,* खण्ड-47, लॉरेंस एण्ड विशार्ट, डिजिटल संस्करण, पृ. 93, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

इसी प्रकार, 3 जून 1885 को एंगेल्स ने एडॉल्फ़ सोर्गे को लिखे पत्र में लिखा:

> "*पूँजी* का दूसरा खण्ड जल्द ही प्रकाशित हो जायेगा; बस मैं प्रस्तावना के प्रूफ़-शीट के आखिरी हिस्से का इन्तज़ार कर रहा हूँ जिसमें रॉडबर्टस को एक और झिड़की मिलेगी। तीसरी किताब का काम भी खुशी-खुशी आगे बढ़ रहा है, लेकिन उसमें अभी लम्बा समय लगेगा। ऐसा नहीं कि उससे कोई फ़र्क पड़ता है क्योंकि पहले दूसरे खण्ड को अच्छी तरह से समझना होगा। *दूसरा खण्ड लोगों में काफ़ी मायूसी पैदा करेगा क्योंकि यह शुद्ध रूप से वैज्ञानिक रचना है, जिसमें उद्वेदन की सामग्री कम ही मिलेगी।* इसके विपरीत तीसरे खण्ड का असर एक बार फिर से बिजली गिरने जैसा होगा, क्योंकि सन्दर्भ के साथ समूचे पूँजीवादी उत्पादन का पहली बार ऐसा विश्लेषण पेश किया गया है और समूचे आधिकारिक बुर्जुआ अर्थशास्त्र को पूर्णत: ख़ारिज कर दिया गया है।" (एंगेल्स का पत्र एडोल्फ़ सोर्गे को, 3 जून, 1885, *वही,* पृ. 296-97, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

13 नवम्बर 1885 को एंगेल्स निकोलाई डेनियलसन को लिखते हैं:

> "मुझे इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं था कि दूसरे खण्ड से तुम्हें भी उतना ही आनन्द मिलेगा, जितना कि मुझे मिला है। *इसमें जो उन्नतियाँ निहित हैं वे वास्तव में इतनी उत्कृष्ट प्रकृति की हैं कि भोंड़ा पाठक उन्हें समझने और उनके नतीजों तक पहुँचने की ज़हमत नहीं उठायेगा।* जर्मनी में वास्तव में यही स्थिति है, जिसमें कि राजनीतिक अर्थशास्त्र समेत समूचा ऐतिहासिक विज्ञान इतने निम्न स्तर पर गिर गया है, कि उससे नीचे गिरना मुश्किल है। हमारे कैथेडर-समाजवादी (जर्मनी में मौजूद कुर्सीतोड़ समाजवादियों की एक किस्म-ले.) कभी भी लोकोपकारी भोंड़े अर्थशास्त्रियों से ज़्यादा कुछ भी नहीं रहे हैं, और अब वे बिस्मार्क के राजकीय समाजवाद के साधारण क्षमाप्रार्थियों के स्तर पर जा गिरे हैं। *उनके लिए, दूसरा खण्ड हमेशा एक सील-बन्द किताब ही रहेगी।* यह उस चीज़ का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जिसे हेगेल 'दुनिया की आम विडम्बना' कहते हैं, कि जर्मन ऐतिहासिक विज्ञान जर्मनी की प्रथम यूरोपीय शक्ति बन जाने के तथ्य से ही फिर से उस निकृष्ट अवस्था में पहुँच गया है जिसमें कि वह तीस वर्ष के युद्ध के बाद गहनतम राजनीतिक पतन के कारण पहुँच गया था। लेकिन सच्चाई यही है। और इस प्रकार, जर्मन 'विज्ञान' इस नये खण्ड की ओर ऐसे देखता है जैसे किसी ऐसी चीज़ की ओर देख रहा जिसे वह समझ नहीं सकता; केवल नतीजों का एक भारी भय उसे सार्वजनिक तौर पर इसकी आलोचना करने से रोक रहा है, और इसलिए, आधिकारिक आर्थिक साहित्य इसके बारे में एक सावधान चुप्पी बनाये हुए हैं। लेकिन तीसरा खण्ड उन्हें अपना मुँह खोलने के लिए मजबूर कर देगा।" (एंगेल्स का पत्र निकोलाई डेनियलसन के लिए, 13 नवम्बर 1885, *वही,* पृ. 348, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

एंगेल्स की यह भविष्यवाणी सही साबित हुई थी। अर्थशास्त्र की दुनिया में हर प्रकार के भोंड़े लेखक, पाठक आदि के लिए आज भी 'पूँजी' का दूसरा खण्ड की 'सीलबन्द किताब' ही है।

अपने प्रकाशन के लगभग 10 साल बाद पहली बार इस पुस्तक की चर्चा हुई। कारण था दो रूसी मार्क्सवादियों तुगान-बरानोव्स्की तथा बुल्गाकोव द्वारा बाज़ार के प्रश्न पर पुस्तकों का प्रकाशन। 1894 में तुगान-बरानोव्स्की, जो बाद में मार्क्सवाद से विचलन कर गये, ने अपनी पुस्तक 'इंग्लैण्ड में वाणिज्यिक संकटों का सिद्धान्त और इतिहास' प्रकाशित की, जिसमें मार्क्स द्वारा 'पूँजी' के दूसरे खण्ड में पेश प्रसिद्ध पुनरुत्पादन स्कीमा (ख़ाका या ढाँचा) का उन्होंने इस्तेमाल किया। यह दीगर बात है कि मार्क्स द्वारा उन आपवादिक स्थितियों को बाद में उन्होंने सामान्यीकृत कर दिया, जिनमें पूँजीवादी व्यवस्था अपने आपको पुनरुत्पादित कर सकती है और इस नतीजे पर जा पहुँचे कि पूँजीवाद अनन्तकाल तक अपने आपको पुनरुत्पादित कर सकता है। उनके द्वारा शुरू की गयी इस धारा को बाद में सामंजस्यवादी धारा (harmonist school) की संज्ञा दी गयी क्योंकि वह मानती थी कि पूँजीवाद में विभिन्न विभागों के बीच समानुपात या सामंजस्य बना रह सकता है। ज़ाहिर है यह मार्क्स की पुनरुत्पादन के स्कीमा को समझने में इस धारा की अवधारणात्मक भूल थी। दूसरे छोर की भूल रोज़ा लक्ज़ेमबर्ग के अल्पउपभोगवादी स्कूल की ओर से हुई, जिसने मार्क्स के पुनरुत्पादन के स्कीमा को ही इस प्रकार के भ्रमों के जनक बताया और उसे ख़ारिज कर दिया। इस पुस्तक के मौजूदा दूसरे खण्ड में हम इन दोनों ही ग़लत व्याख्याओं की मार्क्सवादी नज़रिये से उचित स्थान पर आलोचना पेश करेंगे। अल्पउपभोगवादी स्कूल की ग़लती यह थी कि यह इस बुनियादी बात को नहीं समझता है कि पूँजीवादी व्यवस्था के संकटों का बुनियादी कारण उत्पादन के बुनियादी विभागों के बीच का अननुपात या फिर जनता का अल्पउपभोग नहीं है, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में पूर्ण विभागीय अनुपात सम्भव ही नहीं है और दूसरा उसमें उत्पादन मुनाफ़े के लिए होता

(पेज 19 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 18 से आगे)

है, उपभोग के लिए नहीं। विभागों के बीच अनुपात के अभाव में संकट का पैदा होना या बाज़ार में बिकवाली का संकट पैदा होना वास्तव में संकट का आधारभूत कारण नहीं है, बल्कि महज़ लक्षण हैं। ये लाभप्रदता के संकट के लक्षण हैं। बहरहाल, इन मसलों पर हम इस पुस्तक के तीसरे खण्ड में आयेंगे जिसमें हम मार्क्स की 'पूँजी' के तीसरे खण्ड की खोजों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

अभी हम बस इतना बताना चाहते हैं कि दूसरे खण्ड के बारे में बौद्धिक जगत में कुछ चर्चा तुगान-बरानोव्स्की की 1894 की पुस्तक के साथ शुरू हुई। 1897 में भी बुल्गाकोव की पुस्तक 'पूँजीवादी उत्पादन के लिए बाज़ार के प्रश्न पर' के प्रकाशन के साथ भी इस पर कुछ चर्चा हुई। वास्तव में, तुगान-बरानोव्स्की और बुल्गाकोव से पहले ही लेनिन ने अपनी शुरुआती रचना 'तथाकथित बाज़ार प्रश्न पर' में मार्क्स की 'पूँजी' के दूसरे खण्ड में पेश पुनरुत्पादन स्कीमा का व्यापक तौर पर इस्तेमाल किया था। यह एक लम्बा लेख था जिसे 1893 में लिखा गया था। इसे पढ़ते ही हमें लेनिन द्वारा 'पूँजी' के गहरे अध्ययन का अन्दाज़ा चल जाता है। लेकिन इस रचना की प्रतियों को रूस के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के मण्डलों में पढ़ा गया। 1930 तक यह रचना प्रकाशित नहीं हुई थी। यह लेख एक जी. क्रासिन द्वारा इसी विषय पर दिये गये व्याख्यान के जवाब में सेण्ट पीटर्सबर्ग के सामाजिक-जनवादी (कम्युनिस्ट) क्रान्तिकारियों के समक्ष पेश मौखिक रिपोर्ट पर आधारित था। लम्बे समय तक इस पाण्डुलिपि का पता नहीं चल पा रहा था। बाद में इसकी पाण्डुलिपि मिल गयी और 1930 में सोवियत यूनियन में इसे प्रकाशित किया गया।

'पूँजी' की समूची परियोजना में 'पूँजी' के दूसरे खण्ड के स्थान को समझना मार्क्स द्वारा पेश आर्थिक विज्ञान को समुचित तरीके से समझने के लिए अनिवार्य है। जो इस दूसरे खण्ड को लाँघकर सीधे तीसरे खण्ड पर पहुँच जाता है (जैसा कि मार्क्स के संकट के सिद्धान्त, लगान के सिद्धान्त और ब्याज के सिद्धान्त को समझने की जल्दबाज़ी में कई लोग करते हैं), उसके साथ इस बात का ख़तरा अनिवार्यत: रहता है कि वह माल में अन्तर्निहित बुनियादी अन्तरविरोध के खुलने और विकसित होने की प्रक्रिया की मार्क्स द्वारा की गयी गहरी पड़ताल को समझने से ही चूक जाता है।

माल-रूप में उपयोग-मूल्य और मूल्य के बीच का अन्तरविरोध सतत् मौजूद रहता है और पूँजीवादी माल उत्पादन के समस्त अन्तरविरोधों की जड़ में यही अन्तरविरोध होता है। माल बिकेगा या नहीं, यह कोई पूँजीपति पहले से नहीं जानता है। वह मुनाफ़े की अपेक्षाओं के आधार पर माल का उत्पादन करता है और अपनी उत्पादन शाखा के पूँजीपतियों के साथ सस्ते से सस्ता बेचने की प्रतिस्पर्द्धा में लगा रहता है। उसके पास पहले से यह जानने का कोई रास्ता नहीं होता है कि उसका माल बिकेगा या नहीं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पैदा हो रहे समस्त भिन्न-भिन्न उपयोग-मूल्यों, यानी अलग-अलग मालों का आपस में सुगमता के साथ विनिमय हो जाये, इसे सुनिश्चित करने का कोई रास्ता नहीं होता। वस्तुत:, आम तौर पर ऐसा नहीं होता है। अलग-अलग मालों की माँग और आपूर्ति के समीकरणों में लगातार किसी न किसी प्रकार का असन्तुलन मौजूद रहता है। ऐसा ही हो भी सकता है। क्योंकि उत्पादन सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किसी योजना पर आधारित नहीं होता। उत्पादन का विनियामक होता है निजी मुनाफ़ा, जिसके लिए अलग-अलग पूँजीपति आपस में प्रतिस्पर्द्धारत होते हैं। यह अराजकता उसी बुनियादी अन्तरविरोध से पैदा होती है जो माल-रूप में ही अन्तर्निहित होता है: यानी, एक उपयोग-मूल्य को उपयोग-मूल्य के रूप में वास्तवीकृत होने से पहले, यानी उपयोग में जाने से पहले, मूल्य के रूप में वास्तवीकृत होना होता है, यानी बिकना होता है। लेकिन यह बिकवाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में एक पक्की बात नहीं होती, बल्कि अनिश्चितताओं में घिरी होती है। मूल्यों व उपयोग-मूल्यों के संचरण में, पूँजी के विभिन्न रूपों व आय के विभिन्न रूपों के बीच, समानुपात होना पूँजीवाद में आपवादिक होता है। मार्क्स दूसरे खण्ड की पाण्डुलिपियों के लेखन के दौरान ही एंगेल्स को ही एक पत्र में लिखते हैं:

"जैसा कि तुम जानते हो, दूसरी किताब (खण्ड-2 – अनु.) में पहली किताब में निर्धारित आधारों पर पूँजी के संचरण की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। *इसीलिए संचरण की प्रक्रिया से ही कुछ नयी औपचारिक श्रेणियाँ निकलकर आती हैं, जैसे कि चल और अचल पूँजी, पूँजी का टर्नओवर, आदि।* अन्त में, पहली किताब में हमने इस मान्यता के साथ सन्तोष कर लिया था कि अगर आत्म-संवर्धन की प्रक्रिया में 100 पाउण्ड 110 पाउण्ड में तब्दील हो जाते हैं, तो इस 110 पाण्ड को बाज़ार में वे तत्व पहले से अस्तित्वमान मिलेंगे जिनमें एक बार फिर इन्हें बदलना होगा। *लेकिन अब हम उन स्थितियों की जाँच-पड़ताल करेंगे जिनमें ये तत्व तैयार मिलते हैं, यानी विभिन्न पूँजियों के, पूँजी के विभिन्न अंगों और आय (यानी, बेशी मूल्य) के सामाजिक अन्तर्गुन्थन की।*" (मार्क्स का पत्र एंगेल्स को, 30 अप्रैल 1868, मार्क्स-एंगेल्स. *सेलेक्टेड करेस्पॉण्डेंस,* प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, पृ. 101, *अनुवाद और ज़ोर*)

इस प्रकार मार्क्स दूसरे खण्ड में उन स्थितियों की जाँच करते हैं, जिनमें पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपने आपको पुनरुत्पादित कर सकती है और इसके साथ ही वे स्थितियाँ भी उजागर हो जाती हैं, जिनमें वह अपने आपको पुनरुत्पादित नहीं कर पाती। जैसा कि हमने ऊपर बताया, इसके लिए मार्क्स पूँजीवादी उत्पादन को दो बुनियादी विभागों में बाँटते हैं और उनके बीच उपयोग-मूल्य और मूल्य के विनिमय की समानुपातिकता की स्थितियों की जाँच करते हैं। हम अभी इस बात पर चर्चा नहीं करेंगे (जो इस पुस्तक के तीसरे खण्ड का एक विषय है) कि किस प्रकार विभागों के बीच समानुपात या उसका अभाव वास्तव में पूँजी की लाभप्रदता की गति का ही परिणाम होती है। दूसरे खण्ड में मार्क्स अपने उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर दिखलाते हैं कि किस प्रकार लाभप्रदता के गति के कारण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में माँग और आपूर्ति के बीच का असन्तुलन नियमित तौर पर एक ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ वह मन्दी और संकट के भँवर में उलझ जाती है। इस बात को समझे बग़ैर अगर 'पूँजी' के तीसरे खण्ड के अध्ययन की शुरुआत कर दी जाय तो माल में मौजूद अन्तर्भूत अन्तरविरोध से पैदा होने वाले तमाम अन्तरविरोधों की समझ विकसित कर पाना असम्भव हो जाता है, मसलन, बाज़ार की समस्या, मूल्य और बेशी मूल्य के वास्तवीकरण के संकट का सवाल, आदि।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन सवालों पर संक्षेप में मार्क्स 'पूँजी' के पहले खण्ड में ही चर्चा करते हैं। लेकिन इन समस्याओं को उनके सम्पूर्ण रूप में मार्क्स 'पूँजी' के दूसरे खण्ड में ही समझाते हैं। मार्क्स यहाँ अलग-अलग पूँजियों की गति, मूल्य और उपयोग-मूल्य की अन्तर्गुन्थित दोहरी गति, माँग और आपूर्ति के समतुलन की अभाव की समस्या के विश्लेषण के आधार पर अपने पुनरुत्पादन के स्कीमा को विकसित करते हैं।

मार्क्स दिखलाते हैं कि पूँजीवादी माल उत्पादन की बुनियादी गति विस्तारित पुनरुत्पादन और पूँजी का संचय है। विस्तारित पुनरुत्पादन और पूँजी संचय के आम नियम के कारण, पूँजी के बढ़ते आवयविक संघटन और मुनाफ़े की औसत दर में गिरने की प्रवृत्ति, पूँजी के संघनन और संकेन्द्रण, इजारेदारीकरण और नये स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा के पैदा होने के कारण ही मूल्य व बेशी मूल्य के वास्तवीकरण की पूर्वशर्तें आम तौर पर पूरी नहीं हो पाती हैं।

मार्क्स अपने विश्लेषण की शुरुआत स्मिथ व रिकार्डो के पहले एक राजनीतिक अर्थशास्त्र के स्कूल फ़िज़ियोक्रैट्स से करते हैं। इस स्कूल के फ्रांस्वा केन्ने (Quesney) की पुस्तक 'टाब्लो इकोनोमीक' में पहली बार पुनरुत्पादन की प्रक्रिया का व्यापक अध्ययन किया। इस पुस्तक में केन्ने ने एक बुनियादी सच्चाई की पहचान की : *हर प्रकार की आय, चाहे वह पूँजीपति की आय हो, मज़दूर की आय हो, भूस्वामी की आय हो, सूदखोर की आय हो, या किसी टुटपुँजिया वर्ग की आय हो, वह बिना अपवाद उत्पादन के क्षेत्र में जन्म लेती है।* मार्क्स ने इस रचना का आलोचनात्मक विवेचन करते हुए पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के अपने अध्ययन की शुरुआत की। इस प्रक्रिया में वह स्मिथ व रिकार्डो की इस विषय में समझदारी की भी बात करते हैं और बताते हैं कि इस विशिष्ट विषय पर केन्ने की खोजें कहीं अधिक श्रेष्ठ स्तर की हैं। लेकिन मार्क्स वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पुनरुत्पादन की समूची प्रक्रिया का सम्पूर्णता में अध्ययन किया, उसमें मूल्य व उपयोग-मूल्य के बीच के अन्तरविरोध के कारण जन्म लेने वाले अन्तरविरोधों की सटीक पहचान की और उन स्थितियों को दिखलाया में जिसमें पुनरुत्पादन उतार-चढ़ाव के साथ या सुगमता के साथ हो सकता है, या नहीं हो सकता है। बाद में भी इस प्रश्न पर वॉलरा, कींस, लियोन्तियेव जैसे अर्थशास्त्रियों ने काम किया लेकिन मार्क्स द्वारा इस क्षेत्र में लगायी गयी वैचारिक छलाँग की तुलना में उनका लेखन किसी प्रगति की नुमाइन्दगी नहीं करते हैं, बल्कि कई मामलों में उससे पीछे जाते हैं।

जैसा कि हमने ऊपर बताया, 'पूँजी' के पहले खण्ड में मार्क्स उत्पादन के स्थान यानी कारखाने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। वह दिखलाते हैं कि किस प्रकार एक ओर पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया किसी भी उत्पादन की प्रक्रिया के समान एक श्रम-प्रक्रिया होती है जो उपयोग-मूल्यों को पैदा करती है, वहीं दूसरी ओर वह एक मूल्य-संवर्द्धन प्रक्रिया होती है, यानी बेशी मूल्य को पैदा करने की प्रक्रिया होती है, जो कि पूँजीवादी उत्पादन का लक्ष्य होता है। यहाँ वह पूँजीपति और मज़दूर के रिश्ते को विस्तृत तरीक़े से समझाते हैं और पूँजीवादी मुनाफ़े के स्रोत और साथ ही भूस्वामी के लगान, सूदखोर के ब्याज, व्यापारी के व्यापारिक मुनाफ़े, सभी के स्रोत की ओर भी इशारा कर देते हैं, यानी बेशी मूल्य का उद्यमी पूँजीपति द्वारा विनियोजन। लेकिन दूसरे खण्ड में वह उत्पादन की बजाय पूँजी के संचरण की प्रक्रिया को केन्द्र में रखते हैं। यहाँ वह उद्यमी पूँजीपति (जो कि श्रमशक्ति को ख़रीदकर उसका शोषण करता है और बेशी श्रम को बेशी मूल्य के रूप में विनियोजित करता है), पूँजीवादी भूस्वामी (जो विनियोजित बेशी मूल्य का एक हिस्सा लगान के रूप में प्राप्त करता है), पूँजीवादी सूदखोर (जो बेशी मूल्य का एक हिस्सा ब्याज के रूप में प्राप्त करता है), और व्यापारिक पूँजीपति (जो बेशी मूल्य का एक हिस्सा व्यापारिक मुनाफ़े के रूप में प्राप्त करता है) के बीच के रिश्तों का क़रीबी से विश्लेषण करते हैं, और मज़दूर यहाँ पर केवल मज़दूरी-उत्पादों के ख़रीदार के रूप में और श्रमशक्ति के विक्रेता के रूप में सामने आता है, बेशी मूल्य का उत्पादन करने वाले के रूप में नहीं। ऐसा इसलिए भी है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में शुद्ध उत्पाद (यानी ख़र्च होने वाले उत्पादन के साधनों की भरपाई और ख़र्च होने वाले उपभोग के साधनों की भरपाई के बाद बचने वाला उत्पाद) के लिए प्रभावी माँग पूँजीपति वर्ग और उसके अहलकारों के वर्ग के बीच से ही पैदा होती है, न कि मज़दूर वर्ग के बीच से। यह सच है कि सम्बन्धों के इस संकुल का आधार वास्तव में मज़दूर द्वारा पूँजीपति को श्रमशक्ति का विक्रय ही है, क्योंकि इसके बिना न तो मूल्य व बेशी मूल्य पैदा हो सकता है, न उपयोग-मूल्य पैदा हो सकता है, और न ही उनके वास्तवीकरण का प्रश्न पैदा हो सकता है और नतीजतन संचरण की प्रक्रिया का प्रश्न ही ग़ायब हो जाता है।

अधिकांश भोंड़े अर्थशास्त्री (जिनमें कुछ "मार्क्सवादी" अर्थशास्त्री भी शामिल हैं) 'पूँजी' के दूसरे खण्ड के महत्व को नहीं समझ पाते हैं। उसकी वजह यह है कि मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के विषय में उनका ज्ञान अक्सर गौण स्रोतों, मसलन, कुछ ख़राब पाठ्यपुस्तकों पर आधारित होता है। साथ ही, वे लोग भी इस खण्ड का मूल्य नहीं समझ पाते, जो इसमें कोई उद्वेलनात्मक सामग्री नहीं ढूँढ पाते हैं। वे मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण वैज्ञानिक चरित्र को नहीं समझ पाते। नतीजतन, वे यह समझने में असफल रहते हैं कि मार्क्स का राजनीतिक अर्थशास्त्र समूची पूँजीवादी व्यवस्था के पूरे काम करने के तरीक़े और उसकी गति के नियमों को उजागर करता है, जिसमें महज़ पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के सम्बन्धों की पड़ताल ही शामिल नहीं है, बल्कि आधुनिक पूँजीवादी समाज के सभी बुनियादी वर्गों के बीच के सम्बन्धों की पड़ताल शामिल है। अन्तत:, ऐसे लोग पूँजी के उत्पादन की प्रक्रिया और पूँजी के संचरण की प्रक्रिया की बुनियादी एकता को नहीं समझ पाते हैं, जिसमें बुनियादी निर्धारक भूमिका निश्चित तौर पर उत्पादन की प्रक्रिया ही निभाती है। यह एक अन्तरविरोधी एकता होती है और इस अन्तरविरोध का स्रोत और कुछ नहीं बल्कि स्वयं माल के भीतर मौजूद अन्तरविरोध ही

(पेज 20 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 19 से आगे)

है। यानी, उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य के बीच का अन्तरविरोध। ऐसे लोगों के विपरीत आजकल कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो उत्पादन की प्रक्रिया के निर्धारक महत्व को नहीं समझते और पूँजीवादी शोषण का मूल, आय के विभिन्न रूपों के समाज के विभिन्न वर्गों में बँटवारे के मूल को संचरण की प्रक्रिया में ढूँढते हैं और 'पूँजी' के दूसरे खण्ड को ठीक वह स्थान देते हैं, जो उसका स्थान हो ही नहीं सकता है। वे भी वास्तव में इस दूसरे खण्ड को समझने में असफल रहते हैं। ऐसे लोग पूँजीवादी संकट का मूल भी उत्पादन की प्रक्रिया में देखने के बजाय संचरण की प्रकिया में, बाज़ार में और मूल्य का वास्तवीकरण न होने के संकट में ढूँढते हैं। ये दोनों ही छोर ग़लत हैं और इन पर खड़े लोग मार्क्स की 'पूँजी' की परियोजना को समझने में असफल रहते हैं।

जैसा कि हमने कहा 'पूँजी' के दूसरे खण्ड के महत्व और उसमें पेश खोजों के अर्थ को समझने के लिए यह अनिवार्य है कि हम उत्पादन की प्रक्रिया और संचरण की प्रक्रिया की अन्तरविरोधी एकता को समझें। सामाजिक श्रम विभाजन के साथ जैसे-जैसे माल उत्पादन का विकास हुआ, जैसे-जैसे माल उत्पादन के ही आन्तरिक नियमों के परिणामस्वरूप बहुत-से माल उत्पादक बरबाद हुए, जैसे-जैसे आदिम संचय की प्रक्रिया के साथ प्रत्यक्ष उत्पादकों की एक भारी आबादी को उनके उत्पादन के साधनों व उपभोग के साधनों से वंचित कर उजरती श्रमिकों की एक भारी आबादी और उत्पादन के साधन पर इजारेदार मालिकाना रखने वाले पूँजीपतियों की एक छोटी-सी आबादी पैदा हुई, वैसे-वैसे छोटे पैमाने के उत्पादन का ह्रास हुआ और उत्पादन का समाजीकरण अधिक से अधिक व्यापक रूप ग्रहण करता गया। आज एक माल के उत्पादन में ही सैंकड़ों और कई बार हज़ारों मज़दूर सामूहिक तौर पर लगे होते हैं। उनके श्रम का चरित्र सामाजिक होता है। लेकिन साथ ही उनके श्रम का चरित्र निजी भी होता है, क्योंकि उत्पादन की स्थितियों या साधनों की मालिक पूँजीपति होता है जो श्रमशक्ति को एक निश्चित अवधि के लिए ख़रीदता है और इस रूप में उसके श्रम के उत्पाद का स्वामी होता है। नतीजा यह होता है कि मज़दूर का श्रम एक साथ ही सामाजिक भी होता है (क्योंकि हज़ारों मज़दूरों के सामूहिक श्रम के ज़रिये ही किसी भी माल का उत्पादन होता है) और निजी भी होता है (क्योंकि समूची श्रम व उत्पादन प्रक्रिया और उसके द्वारा पैदा मूल्य व उपयोग-मूल्य पर पूँजीपति का अधिकार होता है)। समूचे सामाजिक श्रम को किस अनुपात में उत्पादन की किन-किन शाखाओं में लगाया जाना है, यह तय करने का अधिकार सामाजिक आवश्यकताओं के आकलन के आधार पर समाज को नहीं होता है, बल्कि आपस में प्रतिस्पर्द्धारत निजी पूँजीपतियों को होता है। नतीजतन, मज़दूर के श्रम का सामाजिक चरित्र सीधे हमें दिखलायी नहीं पड़ता है। वह केवल उस उत्पाद के बाज़ार में बिकने के साथ बाद में प्रकट होता है। यदि सामाजिक श्रम के उत्पाद का एक हिस्सा बाज़ार में नहीं बिक पाता, यानी उसका मूल्य वास्तवीकृत नहीं हो पाता, तो वह एक उपयोग-मूल्य के रूप में भी वास्तवीकृत नहीं हो पाता और सामाजिक उपभोग में नहीं जा पाता। दूसरे शब्दों में, उसमें लगे श्रम को सामाजिक श्रम की मान्यता प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार *वस्तुगत तौर पर सामाजिक हो चुके श्रम* का सामाजिक चरित्र तभी पहचाना जाता है, जब माल बिकता है। इसके साथ ही हम जान पाते हैं कि पूँजीवादी माल उत्पादन में लगे श्रम का कौन-सा हिस्सा समाज द्वारा सामाजिक श्रम के रूप में मान्यता प्राप्त करता है।

मालों के बिकने या न बिकने की अनिश्चितता वास्तव में उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य के अन्तरविरोध की ही अभिव्यक्ति है। यह सामाजिक श्रम और निजी विनियोजन के बीच के अन्तरविरोध को ही हमारे सामने पेश करती है। और इस प्रश्न को तभी समझा जा सकता है जब वैयक्तिक पूँजियों के पुनरुत्पादन व संचरण की प्रक्रिया, और उसके आधार पर समाज के स्तर पर कुल पूँजी के पुनरुत्पादन व संचरण की प्रक्रिया का क़रीबी से अध्ययन किया जाय। मार्क्स 'पूँजी' के खण्ड-2 में यही करते हैं।

जब हम एक पूँजीवादी समाज में मालों के संचरण का अध्ययन करते हैं, तो हमें वास्तव में पूँजी के संचरण का अध्ययन करते हैं। वजह यह कि पूँजीवादी समाज में माल पूँजी के रूप में ही संचरित होते हैं। वह किसी साधारण माल उत्पादक द्वारा उत्पादित माल नहीं होता जिसका मूल्य उसके उत्पादन में लगे अप्रत्यक्ष श्रम (यानी ख़र्च होने वाले उत्पादन के साधनों में लगे श्रम) और उसके प्रत्यक्ष श्रम से निर्धारित होता है, जो अभी मुनाफ़े और मज़दूरी में विभाजित नहीं हो रहा। बल्कि यहाँ माल एक पूँजीपति द्वारा उजरती श्रम के शोषण के आधार पर उत्पादित होता है, जिसका मूल्य उसमें लगे उत्पादन के साधनों के मूल्य, यानी अप्रत्यक्ष श्रम, और उजरती मज़दूरों के प्रत्यक्ष श्रम के मूल्य से निर्धारित होता है, जो अब दो हिस्सों में बँटता है: मज़दूरी और मुनाफ़ा। यह माल मूल्य-संवर्द्धन से गुज़र चुकी पूँजी का प्रतिनिधित्व करता है और वस्तुत: माल-पूँजी के रूप में पूँजी ही है। यानी, अब साधारण उत्पादन के दौर के विपरीत, माल स्वयं पूँजी के रूप में संचरित होते हैं।

इसके साथ संचरण की प्रक्रिया को समझने में कई जटिलताएँ आती हैं। इन्हीं जटिलताओं को हल करने के लिए मार्क्स पहले वैयक्तिक पूँजियों के पुनरुत्पादन की प्रक्रिया का क़रीबी से अध्ययन करते हैं और उसके आधार पर सामाजिक स्तर पर कुल पूँजी के पुनरुत्पादन और संचरण यानी सामाजिक पूँजी के टर्नओवर की प्रक्रिया को समझाते हैं। पूँजी के टर्नओवर का अर्थ है पूँजी के मुद्रा-रूप में निवेशित होने यानी माल-पूँजी (उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति) में तब्दील होने के बाद, उत्पादन के ज़रिये मूल्य-संवर्द्धन से गुज़रने और संवर्द्धित मूल्य से लैस उत्पादित माल-पूँजी के बाज़ार में बिकने और उसके फिर से मुद्रा-रूप में वापस आने में लगने वाला समय। यानी मुद्रा रूप में निवेशित पूँजी का उत्पादन के ज़रिये मूल्य-संवर्द्धन और बिकवाली के बाद वापस मुद्रा-रूप में आने में लगने वाला समय।

मार्क्स पहले वैयक्तिक पूँजी के टर्नओवर की पूरी प्रक्रिया का अध्ययन करते हैं, जिसके लिए वे पूँजी के विभिन्न सर्किटों की बात करते हैं। उसके बाद, उसके आधार पर वे सामाजिक स्तर पर कुल पूँजी के टर्नओवर का विश्लेषण करते हैं। ज़ाहिर है, विश्लेषण का वैज्ञानिक और तार्किक क्रम यही हो सकता है। वैसे भी सामाजिक स्तर पर कुल पूँजी के टर्नओवर को तभी समझा जा सकता है, जब अलग-अलग पूँजियों के बीच प्रतिस्पर्द्धा और उनके बीच विनियोजित बेशी मूल्य के पुनर्वितरण के उनके टर्नओवर पर असर को समझा जा सके। इसी प्रक्रिया में, मार्क्स इस बुनियादी सवाल का हल हमारे सामने पेश करते हैं: निजी विनियोजन और प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित पूँजीवाद जैसी अराजक व्यवस्था किन स्थितियों में अपने आपको पुनरुत्पादित कर पाती है? इसी सवाल का जवाब देने की प्रक्रिया में मार्क्स अपने पुनरुत्पादन के स्कीमा को विकसित करते हैं, जो दूसरे खण्ड के प्रकाशन के कुछ समय बाद से ही बहस के केन्द्र में आ गये थे और आज भी बहस का मसला बने हुए हैं।

मार्क्स पूँजी के संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन की चर्चा पहले खण्ड में और दूसरे खण्ड में, दोनों में ही करते हैं। पहले खण्ड में यह चर्चा पूर्णत: उत्पादन की प्रक्रिया के अंग के रूप में होती है, जहाँ मार्क्स यह दिखलाते हैं कि किस प्रकार पूँजीपति वर्ग आपसी प्रतिस्पर्द्धा और मज़दूर वर्ग के साथ प्रतिस्पर्द्धा के कारण पूँजी के आवयविक संघटन को निरन्तर बढ़ाने को मजबूर होता है और इसी के साथ विनियोजित बेशी मूल्य के एक हिस्से को पूँजी में रूपान्तरित करने के लिए बाध्य होता है। इसके साथ ही पहले से ज़्यादा उत्पादन के साधनों पर पहले से ज़्यादा संख्या में मज़दूर (हालाँकि मज़दूरों की संख्या उसी अनुपात में नहीं बढ़ती जिस अनुपात में उत्पादन के साधन बढ़ते हैं) काम करते हैं, जो पहले से ज़्यादा परिमाण में मुनाफ़ा पैदा करते हैं (हालाँकि इसका अर्थ हमेशा मुनाफ़े की दर में वृद्धि नहीं होती है) पैदा करते हैं। दूसरे खण्ड में साधारण पुनरुत्पादन में माल के संचरण पर बुनियादी चर्चा के बाद मार्क्स पूरी तरह से विस्तारित पुनरुत्पादन की स्थितियों में पूँजी के पुनरुत्पादन और संचरण की चर्चा करते हैं, जिसके लिए पहले वे वैयक्तिक पूँजियों के स्तर पर विश्लेषण करते हैं और फिर सामाजिक स्तर पर कुल पूँजी के आधार पर विश्लेषण करते हैं और अपने पुनरुत्पादन स्कीमा के आधार पर समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के पुनरुत्पादन की स्थितियों को स्पष्ट करते हैं। इसी के आधार पर मार्क्स पूँजी के संचरण की प्रक्रिया में निहित अन्तरविरोधों को पहली बार उजागर करते हैं और दिखलाते हैं कि यह माल में निहित अन्तरविरोध, उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य के बीच के अन्तरविरोध का ही विस्तार है, सामाजिक श्रम और निजी विनियोजना के बीच के अन्तरविरोध की ही अभिव्यक्ति है।

इसलिए दूसरे खण्ड की विशिष्टता को समझना भी आवश्यक है और 'पूँजी' की समूची परियोजना में उसके तार्किक स्थान को समझना भी आवश्यक है। इसी के आधार में हम उत्पादन की प्रक्रिया और संचरण की प्रक्रिया की अन्तरविरोधी एकता को समझ सकते हैं। इस समझ के आधार पर ही 'पूँजी' के तीसरे खण्ड की भी एक समुचित समझदारी निर्मित हो सकती है, जहाँ मार्क्स सम्पूर्णता में पूँजीवादी उत्पादन की गति के नियमों को उजागर करते हैं, जहाँ वे उसके बुनियादी अन्तरविरोध को स्पष्ट करते हुए पूँजीवादी संकट का एक सटीक वैज्ञानिक सिद्धान्त पेश करते हैं, जो ऐतिहासिक तौर पर सही सिद्ध हुआ है। *इसलिए दूसरे खण्ड को भी हमें उतनी ही गहराई से समझने की आवश्यकता है, जितनी गहराई से पहले और तीसरे खण्ड को।*

मौजूदा पुस्तक के इस दूसरे खण्ड में हम मार्क्स की 'पूँजी' के दूसरे खण्ड में पूँजी के संचरण की प्रक्रिया की बुनियादी गतिकी के बारे में उजागर नियमों को ही अधिकतम सम्भव सरल शब्दों में समझेंगे। यह 'पूँजी' के दूसरे खण्ड को पढ़ने का विकल्प नहीं है, बल्कि उसे पढ़ने वालों के लिए एक कुतुबनुमा का काम करेगा, जिसके ज़रिये पाठकों के लिए उसे समझना कुछ सुगम और सरल बनाया जा सके। इसी प्रक्रिया में हम मार्क्स के राजनीतिक अर्थशास्त्र के इन बुनियादी उसूलों की कुछ ग़लत व्याख्याओं का भी खण्डन करेंगे और साथ ही उस पर बाद में हुए हमलों या उसकी ग़लत अवस्थितियों से की गयी आलोचनाओं का जवाब भी देंगे।

हम उम्मीद करते हैं हम अपने इस उद्देश्य में सफल होंगे और यह पुस्तक किसी न किसी रूप में मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के इस विशिष्ट पहलू, यानी पूँजी के संचरण की प्रक्रिया की गतिकी, को समझने में मज़दूर साथियो, छात्र-युवा साथियो, व क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए मददगार साबित होगी।

प्रसिद्ध अमेरिकी मज़दूर-वर्गीय चित्रकार ह्यूगो गेलर्ट द्वार 'पूँजी' पर बनाये चित्रों में से एक

अमेरिका में ट्रम्प की वापसी के मज़दूर वर्ग के लिए क्या मायने हैं?

(पेज 24 से आगे)

तादाद इतनी बढ़ गयी कि स्थानीय लोगों की नौकरी छिन गयी। उसने न सिर्फ़ डेमोक्रैटिक पार्टी की आलोचना की बल्कि रिपब्लिकन पार्टी के कन्ज़र्वेटिव उम्मीदवारों को भी अपने निशाने पर लिया और इस प्रकार उसने बेलागलपेट बात करने वाले शख़्स के रूप में अपनी एक अलग स्वतन्त्र छवि बनायी। उसने लोगों से वायदा किया कि सत्ता में आने पर वह ग़ैर-प्रवासी आप्रवासियों को वापस उनके देश भेजेगा। अमेरिका में निवेश को बढ़ावा देने के लिए वह चीन सहित अन्य देशों से आयातित मालों पर भारी आयात शुल्क लगाएगा ताकि अमेरिका में अमेरिकियों के लिए रोज़गार के अवसर पैदा हो सकें। साथ ही उसने वायदा किया कि वह यूक्रेन में जारी युद्ध को समाप्त करेगा क्योंकि उसमें अमेरिका को बहुत पैसा ख़र्च करना पड़ रहा है और उसके मुक़ाबले यूरोपीय देश कम पैसा ख़र्च कर रहे हैं। इस प्रकार वह 'अमेरिका फ़र्स्ट' की नीति अपनाते हुए हर क्षेत्र में अमेरिका को वरीयता देगा और इस प्रकार को अमेरिका को फिर से 'महान' बना देगा। बाइडेन जैसे उदारवादी राष्ट्रपति के घोर जनविरोधी शासनकाल से त्रस्त अमेरिका मध्य वर्ग ट्रम्प को एण्टी-इस्टैब्लिशमेण्ट शख़्सियत के रूप में देखा और उसके सख़्त वायदों और अमेरिका की श्रेष्ठता को पुर्नस्थापित करने के सपने में यक़ीन करते हुए उसको वोट दिया। मज़दूर वर्ग के एक हिस्से ने भी किसी क्रान्तिकारी शक्ति की ग़ैर-मौजूदगी और अपनी पिछड़ी वर्गीय चेतना की वजह से अपनी ख़स्ताहाल आर्थिक स्थिति के लिए बाइडेन सरकार को ज़िम्मेदार ठहराते हुए ट्रम्प को वोट दिया।

अमेरिका के पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से ने भी ट्रम्प में अपने हितों की हिफ़ाजत करने वाला शख़्स दिखा। ट्रम्प का समर्थन करने वाले पूँजीपतियों में मुख्य रूप से तेल कम्पनियों के मालिक, कैसिनो के मालिक और वित्तीय एवं प्राद्योगिकी क्षेत्र के पूँजीपति शामिल हैं। टेस्ला, स्पेसएक्स और एक्स जैसी दैत्याकार कम्पनियों के मालिक और अमेरिका के सबसे बड़े धनपशुओं में से एक इलॉन मस्क ने ख़ुलेआम ट्रम्प को समर्थन किया और वह ट्रम्प को सबसे ज़्यादा फ़ण्डिंग करने वाला पूँजीपति है। बदले में राष्ट्रपति बनने के बाद ट्रम्प ने उसे सरकार की कार्यकुशलता को बेहतर करने के लिए बनाये गये नये विभाग डिपार्टमेण्ट ऑफ़ गवर्नमेण्ट एफ़िशिएंसी (डीओजीई) का प्रमुख बना दिया। इस विभाग के ज़रिये मस्क सरकार की तमाम कल्याणकारी नीतियों में कटौती कर रहा है और साथ ही अपने निजी हित भी साध रहा है। इस प्रकार ट्रम्प के पिछले कार्यकाल के मुक़ाबले इस बारे चुनावों में ट्रम्प को पूँजीपति वर्ग के सापेक्षत: ज़्यादा बड़े हिस्से का समर्थन मिला। मस्क के अलावा मेटा के मार्क जकरबर्ग, एमेज़ॉन के मालिक जेफ़ बेजॉस, माइक्रोसॉफ़्ट के सत्या नडेला, गूगल के सुन्दर पचाई और एप्पल के टिम कुक भी ट्रम्प के शपथ ग्रहण समारोह में शामिल हुए जो ट्रम्प की ओर उनके बढ़ते झुकाव को पुष्ट करता है। हालाँकि अभी भी ट्रम्प को समर्थन देने को लेकर अमेरिका के पूँजीपति वर्ग में कोई आम सहमति नहीं है।

क्या ट्रम्प फ़ासिस्ट है?

इसमें कोई शक नहीं है कि ट्रम्प की सोच पर अमेरिकी समाज में मौजूद तमाम धुर-दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादी विचारों का ज़बर्दस्त असर है। वह हद दर्जे का नस्लवादी, पितृसत्तात्मक, समलैंगिक द्वेषी, इस्लाम द्वेषी, कम्युनिज़्म-विरोधी और मानवता-विरोधी है और वो अपने इन प्रतिक्रियावादी विचारों को निहायत ही बेशर्मी के साथ ख़ुलकर अभिव्यक्त करता है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि उसकी सोच निर्वात में पैदा नहीं हुई है। अमेरिकी समाज में समय-समय पर प्रतिक्रियावादी विचार विभिन्न रूपों मे पनपते रहे हैं। बीसवीं सदी के अमेरिका में दक्षिणपन्थी पॉप्युलिस्ट आन्दोलन, कू क्लक्स क्लैन, मैकार्थीवादी कम्युनिज़्म-विरोध और इक्कीसवीं सदी में टी पार्टी आन्दोलन से निकले प्रतिक्रियावादी विचारों का ज़हरीला मिश्रण ट्रम्प की सोच में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। परन्तु सवाल यह उठता है कि क्या ट्रम्प को फ़ासीवादी कहा जा सकता है?

इस सवाल का जवाब जानने के लिए हमें देखना होगा होगा कि अमेरिका में ट्रम्प परिघटना में फ़ासीवाद की बुनियादी चारित्रिक अभिलाक्षणिकताएँ मौजूद हैं। निश्चय ही ट्रम्प को अमेरिकी जनता के अच्छे-ख़ासे हिस्से का समर्थन प्राप्त है, परन्तु उसके पीछे *टुटपुँजिया वर्गों का कोई संगठित प्रतिक्रियावादी आन्दोलन* नहीं मौजूद है। उसको मिल रहे जन समर्थन में संगठित आन्दोलन की बजाय बदहाल आर्थिक हालात और क्रान्तिकारी विकल्प की ग़ैरमौजूदगी में उपजी स्वत:स्फ़ूर्त प्रतिक्रिया का तत्व प्रधान है। और न ही ट्रम्प के पीछे *फ़ासीवादी विचारधारा से लैस कोई कॉडर-आधारित फ़ासीवादी संगठन* मौजूद है। वह रिपब्लिकन पार्टी के सबसे दक्षिणपन्थी धड़े की नुमाइन्दगी करता है जोकि एक रूढ़िवादी बुर्जुआ पार्टी है नाकि कॉडर-आधारित फ़ासीवादी पार्टी। इसी प्रकार ट्रम्प की सोच में धुर-दक्षिणपन्थी विचारों की मौजूदगी होने के बावजूद उसकी विचारधारा को फ़ासीवादी नहीं कहा जा सकता है। जब वह अमेरिका को फिर से 'महान' बनाने की बात करता है तो वह निश्चित ही एक साम्राज्यवादी ताक़त के रूप में अमेरिका के पतन से अमेरिकी शासक वर्ग की झल्लाहट व बौखलाहट की अन्धराष्ट्रवादी अभिव्यक्ति करता है, परन्तु वह उस प्रकार व्यवस्थित रूप से किसी विशुद्ध विचारधारात्मक समुदाय और काल्पनिक शत्रु का निर्माण नहीं करता जिस प्रकार कोई फ़ासीवादी विचारधारा करती है। इन वजहों से ट्रम्प को फ़ासीवादी कहना इस परिघटना की सटीक व्याख्या नहीं होगी। इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भविष्य में यह परिघटना एक व्यवस्थित रूप से फ़ासीवादी विचारधारा पर आधारित कॉडर-आधारित संगठन द्वारा संचालित एक फ़ासीवादी आन्दोलन का रूप ले ले। लेकिन फ़िलहाल उसे फ़ासीवादी कहना कतई सही नहीं है।

आने वाले दिनों की तस्वीर

दोबारा अमेरिका का राष्ट्रपति के बाद से ही ट्रम्प अपनी छवि को बरकरार रखने के लिए रोज़ाना ऐसे सनसनीखेज फ़ैसले ले रहा है जो दुनियाभर में चर्चा का विषय बन रहे हैं। अपनी छवि को बरकरार रखने के लिए उसकी यह मजबूरी है कि आये दिन ऐसी सनसनी फैलाता रहे। परन्तु इसकी सम्भावना नगण्य है कि ट्रम्प अपने इन फ़ैसलों को पूरी तरह से लागू कर पाएगा क्योंकि आज दुनिया उपनिवेशवाद वाले साम्राज्यवाद के दौर से काफ़ी आगे निकल चुकी है और अब उपनिवेशवाद के दौर में वापसी मुमकिन नहीं है। कनाडा को 51वाँ राज्य बनाने, पनामा नहर व ग्रीनलैण्ड पर अमेरिकी क़ब्ज़ा करने और ग़ज़ा से फ़िलिस्तीनियों को विस्थापित वहाँ पर्यटन विकसित करने की ख़्वाहिश को पूरी करने की दिशा में जैसे ही ट्रम्प आगे क़दम बढ़ाएगा उसका सामना न सिर्फ़ जन प्रतिरोध और रूस तथा चीन जैसे प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादी देशों से होगा, बल्कि अमेरिका के सहयोगी देश, मसलन यूरोपीय देश भी उसका कड़ा विरोध करेंगे। अमेरिकी पूँजीवाद के दूरगामी हितों की परवाह करने वाले पूँजीपति वर्ग के नुमाइन्दे भी उसे ऐसा करने से रोकेंगे क्योंकि यह पूँजीवाद के अस्तित्व के संकट को और गहरा करने का काम करेगा। यहाँ तक कि अवैध आप्रवासियों को अमेरिका से वापस भेजने का फ़ैसला यदि एक हद से ज़्यादा लागू होता है तो अमेरिकी पूँजीपति वर्ग इसका विरोध करेगा क्योंकि यह अवैध या ग़ैर-दस्तावेज़ी आप्रवासन अमेरिका में मज़दूरी को नीचे रखता है और अमेरिकी मज़दूर वर्ग की पूँजीपति वर्ग के सम्मुख मज़दूरी के लिए मोलभाव की क्षमता को कम करता है और इसलिए यह अमेरिकी पूँजीपति वर्ग के हित में है। इसलिए यह फ़ैसला भी लम्बे समय तक पूरी तरह से लागू हो पाएगा इसपर बड़ा प्रश्नचिह्न है। इसी प्रकार प्रतिस्पर्द्धात्मक आयात शुल्क लगाने की कवायद एक सीमा से आगे नहीं जा सकती क्योंकि उससे पैदा होने वाली महँगाई पूँजीपति वर्ग के लिए भी लम्बे दौर में फ़ायदेमन्द साबित नहीं होगी। अभी ही इसके संकेत मिलने लगे हैं कि ट्रम्प अपने तमाम फ़ैसलों पर आगे बातचीत करने के लिए तैयार है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ट्रम्प के लिए ये फ़ैसले विश्व स्तर पर अमेरिका के पक्ष में मोलभाव करने के औजार हैं और वह हालात के हिसाब से इन फ़ैसलों में आसानी से फेरबदल कर सकता है या उनमें संशोधन कर सकता है। यदि ट्रम्प ऐसा नहीं करता है और अपनी सनक पर कायम रहता है तो अमेरिका का पूँजीपति वर्ग स्वयं उससे सत्ता से बाहर करने की तैयारी करेगा।

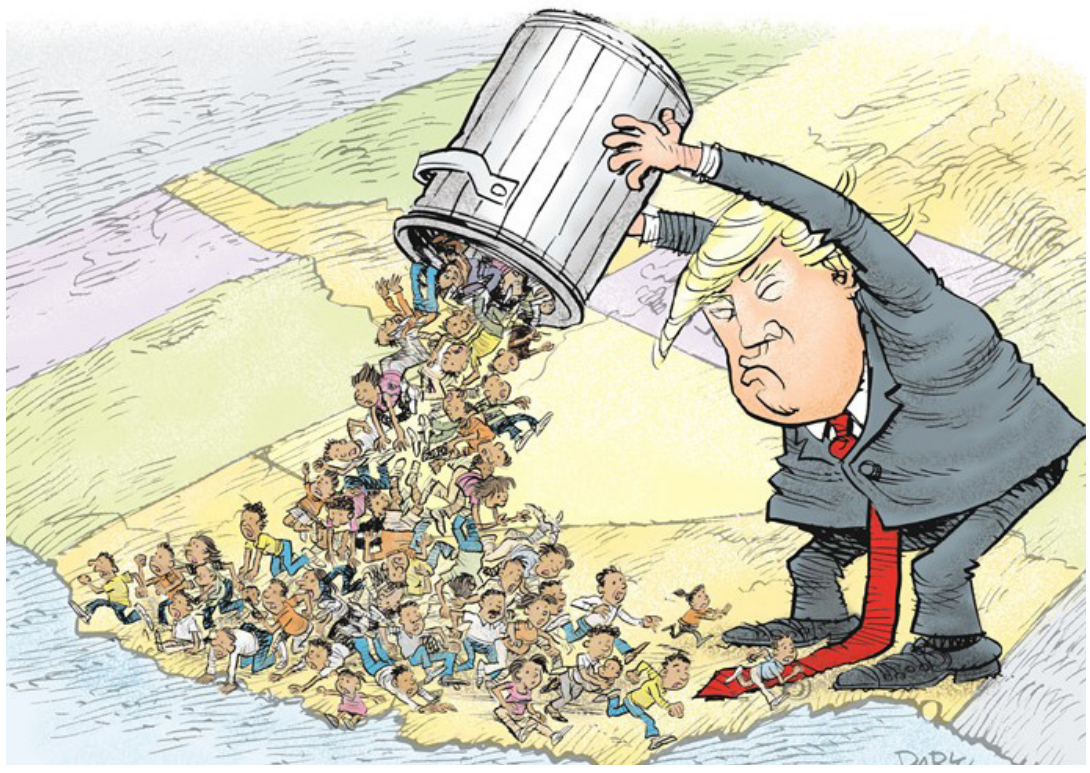

परन्तु जिस हद तक भी ट्रम्प अपने फ़ैसलों पर अमल करेगा, इतना तो तय है कि विश्व राजनीति की अस्थिरता बढ़ने ही वाली है और जो राजनीतिक यथास्थिति बनी चली आ रही थी, वह टूटेगी। इसका लाभ अन्तत: किसे मिलेगा यह इस पर निर्भर करता है कि जनता की शक्तियाँ निरन्तरता के टूटने और विच्छेद से पैदा होने वाली स्थिति में सही क्रान्तिकारी हस्तक्षेप कर पाती हैं, या पूँजीपति वर्ग अन्तत: स्थिति को सम्भाल लेता है और अपने वर्ग शासन के हितों के अनुसार समायोजित कर लेता है। पहले ही ख़ासतौर पर अमेरिका व चीन के बीच व्यापार युद्ध की शुरुआत हो चुकी है। ट्रम्प के रवैये से अमेरिका व चीन के बीच दक्षिण चीन सागर में झड़प बढ़ सकती है और मध्यपूर्व जैसे दुनिया के अन्य हिस्सों में भी युद्ध व हिंसात्मक गतिविधियों में इज़ाफ़ा होने की सम्भावनाएँ बढ़ेंगी। ट्रम्प परिघटना को दुनिया के विभिन्न हिस्सों में तेज़ी से उभर रही धुर-दक्षिणपन्थी संगठनों व आन्दोलनों की रोशनी में देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सड़ते हुए विश्व पूँजीवाद के पास अब मानवता को देने के लिए हिंसा, उन्माद और नफ़रत के अलावा और कुछ नहीं बचा है। विश्व पूँजीवाद ने मानवता को जिस ख़तरनाक मानवद्रोही मुकाम पर पहुँचा दिया है ट्रम्प उसी का एक मूर्त रूप है। ग्राम्शी के शब्दों में कहें तो वह पुराने दौर के समाप्त होने और नये दौर के शुरू होने के बीच के समय के संकट का रुग्ण लक्षण है। यह एक त्रासदी है कि दुनिया भर की मेहनतकश आबादी को इस रुग्ण लक्षण को झेलना पड़ रहा है। इस त्रासदी का ख़ात्मा करने के लिए दुनिया की मेहनतकश अवाम को पूँजीवाद को उसकी कब्र तक पहुँचाने और समाजवाद के नये दौर को वजूद में लाने के लिए कमर कसनी होगी।

फ़िलिस्तीनी कविताएँ

अज्ञात

फ़िलिस्तीन

हमारे दोस्तों से
हमारे दोस्तों जैसी बू नहीं आती
उनसे अस्पतालों जैसी बू आती है

हमारे अस्पतालों से
हमारे अस्पतालों जैसी बू नहीं आती
उनसे क़ब्रिस्तानों की बू आती है

हमारे क़ब्रिस्तानों से
हमारे क़ब्रिस्तानों जैसी बू नहीं आती
उनसे हमारे दोस्तों जैसी बू आती है

फ़िलिस्तीन में

*(अनुवाद : **असद ज़ैदी**)*

ग़स्सान कानाफ़ानी

(ग़स्सान कानाफ़ानी (8 अप्रैल 1936–8 जुलाई 1972) एक महत्वपूर्ण फ़िलिस्तीनी लेखक और कवि होने के साथ ही वामपन्थी क्रान्तिकारी विचारों के एक नेतृत्वकारी राजनीतिज्ञ भी थे। 1972 में इज़रायली खुफ़िया एजेन्सी 'मोसाद' ने उनकी कार में बम लगाकर उसे उड़ा दिया और कानाफ़ानी और उनकी सत्रह वर्षीया भतीजी लामीस की हत्या कर दी।)

सच की जुबान

तुम्हारी सारी सेनाएँ
तुम्हारे सारे लड़ाके
तुम्हारे सारे टैंक
तुम्हारे सारे सैनिक
उस लड़के के ख़िलाफ़ हैं
जिसके हाथ में पत्थर है
जो वहाँ खड़ा है
निपट अकेला
मैं उसकी आँखों में सूरज देखता हूँ
मुस्कान में उसकी
मुझे चाँद दिखायी देता है
और मैं चकित हूँ
कि कौन कमज़ोर है और
कौन ताक़तवर
कौन सही है और
कौन ग़लत
मैं कामना करता हूँ और
केवल कामना करता हूँ
कि सच की एक ज़ुबान हो!!

*(अनुवाद : **भास्कर चौधुरी**)*

दारीन तातूर

दारीन तातूर फ़िलिस्तीन की एक कवि, राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ता और मीडियाकर्मी हैं। 2018 में सोशल मीडिया पर एक कविता के प्रकाशन के बाद हिंसा भड़काने और एक आतंकवादी संगठन का समर्थन करने के आरोप में गिरफ़्तार करके उन पर इज़रायली अदालत में मुक़दमा चलाया गया और क़ैद की सज़ा दी गयी।

एक कविता की नज़रबन्दी

एक दिन,
उन्होंने रोक लिया मुझे
हथकड़ियाँ पहनायीं,
बाँध दिया मेरे शरीर, मेरी आत्मा
मेरे सर्वस्व को...
फिर उन्होंने कहा : इसकी तलाशी लो,
हम इसके भीतर ढूँढ़कर रहेंगे एक आतंकवादी!

उन्होंने मेरे हृदय को
खींच निकाला बाहर
वैसे ही मेरी आँखों को भी,
चप्पा-चप्पा छान मारा मेरी भावनाओं तक का।

मेरी आँखों से उन्हें एक नाड़ी मिली प्रेरणा की,
मेरे हृदय से, अर्थान्वेषण की एक योग्यता।

फिर उन्होंने कहा : सावधान।
वह छिपा रही है हथियार
जेबों की गहराई में अपने।
इसकी तलाशी लो!
पता लगाओ विस्फोटकों का।

और इस तरह उन्होंने मेरी तलाशी ली...
अन्त में, मुझे दोषी ठहराते हुए उन्होंने कहा :
हमें कुछ नहीं मिला
उसकी जेबों में अक्षरों के सिवाय।
कुछ नहीं मिला सिवाय एक कविता के।

*(अनुवाद : **राजेश चन्द्र**)*

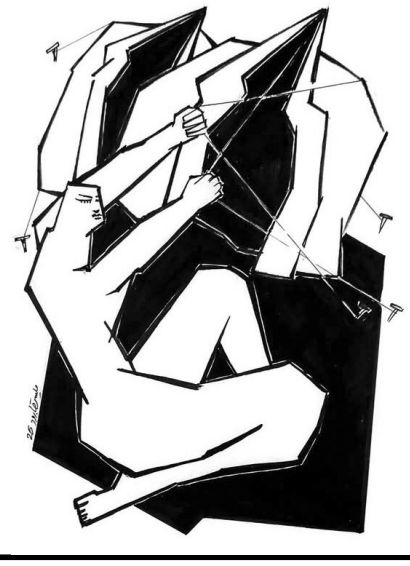

फ़िलिस्तीनी कविताएँ

शाहद अलनामी

युवा जुझारू कवयित्री और लेखिका होने के साथ ही वे अनुवादक, वीडियो सम्पादक और वॉयस ओवर आर्टिस्ट भी हैं। वह भी 'ग़ज़्ज़ा पोयट्स सोसायटी' की सदस्य हैं और नरसंहार की जारी विभीषिका के दौरान लगातार ग़ज़्ज़ा में ही मौजूद रही हैं।

जीवन का पाठ

हम जीवन का पाठ पढ़ाते हैं।

हम फ़िलिस्तीनी प्रत्येक सुबह,
जैसे ही खड़े होते हैं,
दुनिया को जीने का सलीका सिखाते हैं।
ग़ज़्ज़ा में प्रत्येक भोर
हम महज़ नये दिन के स्वागत के लिए नहीं खड़े होते,
बल्कि दुनिया को प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति
लचीलापन दिखाने के लिए खड़े होते हैं।
बावजूद तमाम चुनौतियों के जिनका हम सामना करते हैं,
दृढ़ बनी रहती हैं हमारी आत्माएँ, चमकती रहती है गहरी
मुसीबत में भी उम्मीद की किरण की तरह।

हम हमारे घरों के मलबों और हमारे टूटे हुए
सपनों की ख़ुशबुओं से गुज़रते हैं,
फिर भी हम उस उत्पीड़न का विरोध करने के लिए
दृढ़ संकल्पित होकर खड़े हैं जो हमारी रोशनी को
दबाना चाहता है।

*(अनुवाद : **भास्कर चौधुरी**)*

अब्दुलकरीम अल-करमी (अबु सलमा)

(प्रख्यात फ़िलिस्तीनी कवि अबू सलमा का जन्म 1909 में तुलकरम फ़िलिस्तीन में हुआ था। उन्होंने क़ानून की पढ़ाई की और अप्रैल 1948 तक फ़िलिस्तीन के हाइफ़ा में काम किया। उसके बाद वे कुछ समय के लिए अक्का और फिर दमिश्क चले गये। वह फ़िलिस्तीनी मुक्ति संगठन (पी.एल.ओ.) से भी जुड़े रहे। निधन : 1980, वॉशिंगटन।)

हम लोग लौटेंगे

प्यारे फ़िलिस्तीन
मैं कैसे सो सकता हूँ
मेरी आँखों में यातना की परछाईं है
तेरे नाम से मैं अपनी दुनिया सँवारता हूँ
और अगर तेरे प्रेम ने मुझे पागल नहीं बना दिया होता
तो मैं अपनी भावनाओं को
छुपाकर ही रखता
दिनों के क़ाफ़िले गुज़रते हैं
और बातें करते हैं
दुश्मनों और दोस्तों की साज़िशों की
प्यारे फ़िलिस्तीन
मैं कैसे जी सकता हूँ
तेरे टीलों और मैदानों से दूर
ख़ून से रंगे
पहाड़ों की तलहटी
मुझे बुला रही है
और क्षितिज पर वह रंग फैल रहा है
हमारे समुद्र तट रो रहे हैं
और मुझे बुला रहे हैं
और हमारा रोना समय के कानों में गूँजता है
भागते हुए झरने मुझे बुला रहे हैं
वे अपने ही देश में परदेसी हो गये हैं
तेरे यतीम शहर मुझे बुला रहे हैं

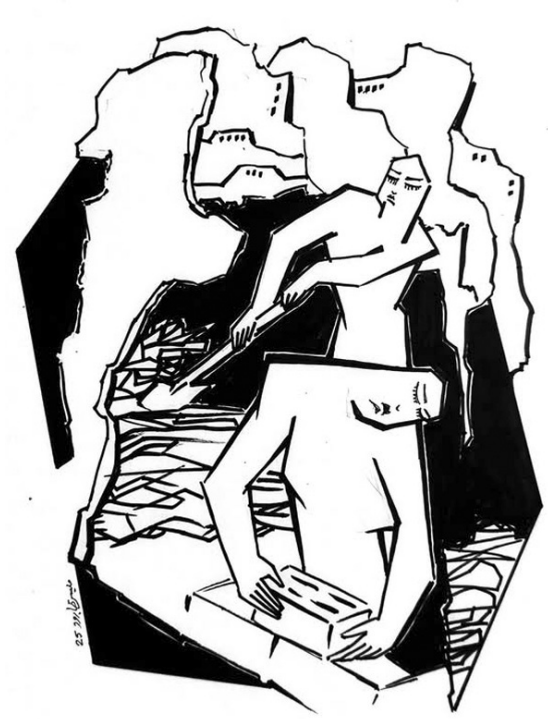

और तेरे गाँव और गुम्बद
मेरे दोस्त पूछते हैं
'क्या हम फिर मिलेंगे?'
'हम लोग लौटेंगे?'
हाँ, हम लोग उस सजल आत्मा को चूमेंगे
और हमारी जीवन्त इच्छाएँ
हमारे होंठों पर हैं
कल हम लोग लौटेंगे
और पीढ़ियाँ सुनेंगी
हमारे क़दमों की आवाज़
हम लौटेंगे आँधियों के साथ
बिजलियों और उल्काओं के साथ
हम लौटेंगे
अपनी आशा और गीतों के साथ
उठते हुए बाज के साथ
पौ फटने के साथ
जो रेगिस्तानों पर मुस्कुराती है
समुद्र की लहरों पर नाचती सुबह के साथ
ख़ून से सने झण्डों के साथ
और चमकती तलवारों के साथ
और लपकते बरछों के साथ
हम लौटेंगे

*अनुवाद : **रामकृष्ण पाण्डेय***

इन कविताओं के साथ दिये गये सभी चित्र फ़िलिस्तीनी चित्रकार मैसरा बारूद ने बनाये हैं।

सभी कविताएँ 'अन्वेषा वार्षिका–2025' से साभार ली गयी हैं

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

अमेरिका में ट्रम्प की वापसी के मज़दूर वर्ग के लिए क्या मायने हैं?

● आनन्द

अमेरिका में डोनाल्ड ट्रम्प के दोबारा राष्ट्रपति बनने के बाद से अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में भूचाल-सा आ गया है। गत 20 जनवरी को शपथ लेने से पहले ही ट्रम्प ने अपनी भावी योजनाओं का खाका पेश करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि अपने दूसरे कार्यकाल में वह पहले से भी ज़्यादा उग्र और सिरफ़िरे क़दम उठाने वाला है। उसने अमेरिका से अवैध आप्रवासियों को खदेड़ने का वायदा करने के साथ ही पनामा नहर को फिर से अमेरिकी नियन्त्रण में करने, कनाडा को अमेरिका का 51वाँ राज्य बनाने और ग्रीनलैण्ड पर क़ब्ज़ा करने और अमेरिका को फिर से 'महान' बनाने के सपने अमेरिकी लोगों को दिखाये। दोबारा राष्ट्रपति पद की शपथ लेते ही ट्रम्प ने दर्ज़नों कार्यकारी आदेशों पर दस्तख़त किये जिनमें अमेरिका व मेक्सिको की सीमा के आसपास राष्ट्रीय आपातकाल घोषित करने, अमेरिका में पैदा होने वाले बच्चे को स्वत: अमेरिकी नागरिकता देने के प्रावधान को ख़त्म करने, केवल दो यौनिकताओं, यानी पुरुष व स्त्री को ही स्वीकार करने, विविधता, समता और समेकता सम्बन्धित कार्यक्रमों को समाप्त करने, विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) से अमेरिका की वापसी, 2021 में अमेरिकी सरकार के केन्द्र कैपिटल हिल पर हमला करने वाले अपने 1600 समर्थकों को आम माफ़ी देने के फ़ैसले शामिल थे। उसके बाद ट्रम्प ने अपने दूसरे कार्यकाल के दूसरे सप्ताह में ही अमेरिकी सहायता एजेंसी यूएसएड को बन्द करने एवं कनाडा, मेक्सिको व चीन पर 25 प्रतिशत, 25 प्रतिशत और 10 प्रतिशत अतिरिक्त आयात शुल्क लगाने की भी घोषणा कर दी, हालाँकि अगले ही दिन कनाडा व मेक्सिको पर लगाने वाले आयात शुल्क को फ़िलहाल 1 महीने के लिए स्थगित करने का फ़ैसला किया गया। यही नहीं अमेरिका से अवैध आप्रवासियों को अपराधियों की भाँति निहायत ही अपमानजनक ढंग से उनके देश वापस भेजने की प्रक्रिया भी शुरू हो चुकी है। ये सभी क़दम दिखाते हैं कि आने वाले दिनों में ट्रम्प का कार्यकाल ऐसे सनसनीखेज घटनाक्रमों से भरपूर होगा जिनके दुनियाभर की मेहनतकश आबादी के लिए गम्भीर निहितार्थ होंगे। विश्व राजनीति में चल रही इस उथल-पुथल और उसके निहितार्थ को समझने के लिए और ट्रम्प नामक परिघटना को और गहराई से समझने की ज़रूरत है।

ट्रम्प परिघटना को मज़दूर वर्ग के नज़रिये से कैसे समझें?

ट्रम्प के सनक भरे बयानों और उसके सिरफ़िरेपन को देखकर बहुत से लोग ताज्जुब करते हैं कि भला ऐसा शख़्स दुनिया के सबसे ताक़तवर देश का राष्ट्रपति कैसे बन सकता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह व्यक्ति अपने आप में एक नमूना है जिसके नमूनेपन को देखकर अमेरिकी पूँजीवाद के तमाम समर्थक व प्रशंसक भी शर्म से झेंप जाते हैं। हालाँकि हमारे देश के 'सुप्रीम लीडर' को देखकर उनकी झेंप की भावना अक्सर प्रतिस्पर्द्धा की भावना में भी तब्दील हो जाती है! बहरहाल, ऐसा भी नहीं है कि अमेरिकी राजनीति में ऐसे शख़्स का तूफ़ानी उभार बिल्कुल समझ से परे है। अगर हम अमेरिकी समाज की वर्तमान दशा व विश्व के पैमाने पर अमेरिकी साम्राज्यवाद की मौजूदा सेहत की रोशनी में इस परिघटना को देखें तो हमें ट्रम्प नामक परिघटना को समझना मुश्किल नहीं होगा।

ट्रम्प की दोबारा ताज़पोशी एक ऐसे समय हुई जब अमेरिकी साम्राज्यवाद अपने ढलान के रास्ते पर काफ़ी आगे निकल चुका है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से साम्राज्यवादी दुनिया की चौधराहट कर रहे अमेरिका के सितारे पिछले कुछ दशकों से लगातार गर्दिश में चल रहे हैं। 1991 में सोवियत यूनियन के पतन के बाद एकध्रुवीय दुनिया के एकछत्र साम्राज्य की रहबरी का दावा ठोंकने वाले अमेरिकी पूँजीवाद का विजयोल्लास ज़्यादा दिन तक नहीं टिका और नयी सदी आते-आते उसके ढलान पर उतरने के संकेत नज़र आने लगे थे। 21वीं सदी की शुरुआत में पहले डॉट-कॉम बुलबुले के फूटने और फिर 2007-08 में हाउसिंग बुलबुले के फूटने के बाद से यह स्पष्ट हो चुका था कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था अपने अधोपतन की ओर बढ़ रही है, हालाँकि अमेरिकी अर्थव्यवस्था में मन्दी की जड़ें 1960 व 1970 के दशक की मन्दी में ही देखी जा सकती हैं जिसके बाद नवउदारवादी साम्राज्यवाद के मौजूदा दौर की शुरुआत हुई थी। इसी बीच रूस की अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ होने की वजह से वह साम्राज्यवादी दुनिया के रंगमंच पर एक बार फिर से बड़ी ताक़त के रूप में उभरा और दूसरी ओर चीन में पूँजीवाद के अभूतपूर्व रफ़्तार से विकास की बदौलत वह भी साम्राज्यवादी मुल्कों की दहलीज़ पर दस्तक देने लगा। रूस और चीन का गठजोड़ अमेरिका नीत पश्चिमी साम्राज्यवादी ध्रुव को चुनौती देने लगा। हालाँकि अभी भी अमेरिका विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, परन्तु इक्कीसवीं सदी के पहले दो दशकों के दौरान चीन की अर्थव्यवस्था में हुए तेज़ रफ़्तार विकास की वजह से चीन अर्थव्यवस्था के कई अहम क्षेत्रों में अमेरिका से आगे निकल चुका है या फिर उसको कड़ी टक्कर देने लगा है। चीन अब दुनिया की सबसे बड़ी मैन्युफ़ैक्चरिंग औद्योगिक अर्थव्यवस्था बन चुका है और वह दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक भी है। टेलीकम्युनिकेशन, इलेक्ट्रिक वाहन और रिन्यूएबल ऊर्जा के क्षेत्रों में वह पहले ही अमेरिका को मात दे चुका है और हाल ही में उसने *चैटजीपीटी* व पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों में निर्मित आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (एआई) के अन्य मॉडलों की तुलना में *डीपसीक* नामक बेहद सस्ता और कार्यकुशल एआई मॉडल विकसित करके तहलका मचा दिया। हाई-टेक उद्योगों के अन्य क्षेत्रों में भी वह अमेरिका को कड़ी टक्कर दे रहा है। चीन लैटिन अमेरिका सहित दुनिया के तमाम हिस्सों में सड़कों, बन्दरगाहों, हवाई अड्डों के निर्माण में बड़े पैमाने पर निवेश कर रहा है जिससे उसका वर्चस्व बढ़ता रहा है। ट्रम्प द्वारा पनामा नहर को अमेरिकी क़ब्ज़े में करने की घोषणा के पीछे मुख्य कारण इस नहर पर चीन द्वारा बनाए गए बन्दरगाह हैं जो अमेरिकी साम्राज्यवादियों के आँखों में किरकिरी बने हुए हैं। इसी प्रकार ग्रीनलैण्ड पर क़ब्ज़ा करने की आकांक्षा के पीछे भी आर्कटिक सागर में रूस व चीन की साम्राज्यवादी ध्रुव के साथ चल रही साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा ही है। चीन के इस फ़र्राटा पूँजीवादी विकास और उसकी बढ़ते वर्चस्व को देखकर अमेरिकी शासक तबक़ा सकते में आ गया है और अमेरिका में पिछले कुछ वर्षों से चीन को मुख्य शत्रु के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त रूस, चीन, ब्राज़ील, भारत व दक्षिण अफ़्रीका जैसे तमाम पूँजीवादी देशों ने विश्व ब्रिक्स नामक समूह बनाया जो जी7 को टक्कर दे रहा है और इसमें नये सदस्य देश भी शामिल हुए हैं। हाल के वर्षों में इसमें मिस्र, इथोपिया, इण्डोनेशिया, ईरान व संयुक्त राज्य अमीरात भी शामिल हो गए हैं। ब्रिक्स के उभार और विस्तार से विश्व बाज़ार में अमेरिकी डॉलर का दबदबा भी कम होने के संकेत स्पष्ट हैं क्योंकि ये देश आपस में एक-दूसरे देशों की मुद्रा में व्यापार करने के समझौते कर रहे हैं और यहाँ तक कि ब्रिक्स की एक साझा मुद्रा की भी बातें चल रही हैं। इन सभी वजहों से पिछले कुछ वर्षों से अमेरिकी साम्राज्यवादी खेमे में बौखलाहट मची हुई है।

अर्थव्यवस्था के अतिरिक्त सैन्य व सामरिक क्षेत्र में अमेरिका को पिछले दो-तीन दशकों के दौरान बड़ी शिकस्तों का समाना करना पड़ा है। इराक़ व अफ़ग़ानिस्तान में मात खाने के बाद अमेरिकी साम्राज्यवादी सेना को अपमानजनक ढंग से वापस जाना पड़ा। यूक्रेन में जारी युद्ध में भी रूस का पलड़ा भारी पड़ रहा है और अमेरिका नीत नाटो एक और शिकस्त की ओर अग्रसर है। ग़ाज़ा में भी ज़ायनवादी इज़रायल के नरसंहारक युद्ध में अमेरिका द्वारा दिये गये हथियारों व सैन्य सहायता की बदौलत इज़रायल ग़ाज़ा में अभूतपूर्व रूप से तबाही मचाने के बावजूद हमास और फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष को नेस्तनाबूद करने में नाकाम साबित हुआ और अन्तत: उसे युद्धविराम के लिए मजबूर होना पड़ा जो इज़रायल के साथ ही साथ अमेरिकी साम्राज्यवाद की भी अभूतपूर्व और शर्मनाक शिकस्त है और दिखलाता है कि जनता कभी हारती नहीं।

विश्व पटल पर अमेरिका के आर्थिक व सैन्य वर्चस्व में गिरावट की वजह से अमेरिकी समाज में पिछले कुछ वर्षों से एक बौखलाहट-सी मची हुई है। देश के भीतर भी 2007-08 की मन्दी के बाद से मज़दूर वर्ग के साथ ही साथ मध्य वर्ग के जीवन के हालात में लगातार गिरावट आयी है। वहाँ मज़दूरी की दर 1960 के दशक की दर से भी नीचे जा चुकी है। कोविड महामारी व यूक्रेन युद्ध ने आग में घी डालने का काम किया और जीवनयापन का ख़र्च आम इन्सान की पहुँच के बाहर होता जा रहा है। छोटे-मोटे काम-धन्धे तबाह हो रहे हैं और आर्थिक तंगी की वजह से मध्य वर्ग में एक चिड़चिड़ाहट व झल्लाहट पैदा हुई है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद के पराभव की इस परिस्थिति और बढ़ती आर्थिक तंगी की वजह से अमेरिकी मध्यवर्ग में पैदा हुई चिड़चिड़ाहट, झल्लाहट और बौखलाहट को ट्रम्प ने अपने सनक भरे अन्दाज़ में अभिव्यक्ति दी। हालाँकि वह ख़ुद एक रियल एस्टेट धनपशु है और इलॉन मस्क जैसे अरबपति उसकी टीम में हैं, परन्तु उसने ख़ुद को सत्ताधारी कुलीन लोगों से अलग बताते हुए कहा कि इन सत्ताधारियों ने अमेरिका को उसके पतन की ओर धकेल दिया है और उन्होंने आप्रवासन को बढ़ावा दिया जिसकी वजह से आप्रवासियों की

(पेज 21 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गाँधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006